सीताराम • • सीताराम • • सीताराम

श्रीमैथिली रमणो विजयते

श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः

श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश

नाम-रूप-लीला-धामात्मक

पूर्वार्ध

संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
'सीताशरण'

सीताराम • • सीताराम • • सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक-पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशक:-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्री चारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०-प्र०)

प्रथम संस्करण १०२५ प्रति | माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई० | न्यौछावर १५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी।

निकाल दे ॥२२॥ यदि त्रिपुण्ड्र तिलक को धारण करके ब्राह्मण किसी के घर चला जाय; तो वह घर श्मशान के सदृश्य अपवित्र हो जाता है ॥२३॥ पुनः देखिये कि—त्रियक्पुण्ड्र धरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति । पितरस्तस्य यान्तेव कालसूत्रं सुदारुणम् ॥ वृद्धहारीतस्मृति धर्मशास्त्र अ० ११ श्लो० २८३ । जो मनुष्य त्रिपुण्ड्र तिलक लगाये हुये ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन करवाता है, तो उसके पितृ कालसूत्र नामक कठिन नरक में जाकर पड़ते हैं। और--धृतोर्ध्वपुण्ड्र देहश्च पवित्र कर एव च। प्रविष्य मन्दिरं विष्णोः संमार्जन्या विशोधयेत् ॥ वृद्धहारीतस्मृति धर्मशास्त्र अ० ११ श्लो० ८ । अर्थ--प्रथम अपने शरीर में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाकर शरीर को पवित्र करके तब भगवान के मन्दिर में प्रवेश करके मन्दिर या भगवत् पार्षदों को शुद्ध करना और भगवान् की पूजा करना चाहिये ।

नोट:--इस प्रसंग में शिवलिंग धारी ब्राह्मण की पूजा निषेध कही गई है । किन्तु भगवान शिव की निन्दा और तिरस्कार नहीं किया है । ब्राह्मण सात्त्विक प्रधान होने वाले और श्रीहरि भक्त होंने चाहिये । तथापि कुछ ब्राह्मण कहीं २ ऐसा कहते हैं कि--ब्राह्मणों को ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक नहीं लगाना चाहिये । यह तो शूद्रों का तिलक है अस्तु यह शास्त्रीय प्रमाण लिखा गया है कि ब्राह्मण को ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक निषेध नहीं है, त्रिपुन्ड्र निषेध है । भगवान श्रीहरि के मन्दिरों के पुजारी ब्राह्मणों को तो ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक अवश्य लगाना चाहिये । यद्यपि ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक मानव मात्र का परमोद्धारक है । देखिये कि—

ऊर्ध्वपुन्ड्रेण संयुक्तो म्रियते यस्तु मानवः । चान्डालोपि विशुद्धात्मा विष्णु लोके महीयते ॥ बृहद्वैष्णव पद्धति पत्र २४ गतिबोध पृ० ४१ से । ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक को यदि चान्डाल भी लगाये हो, तो वह विशुद्ध हो जाता है और देहावसान अर्थात् मरने के बाद भगवद्धाम को जाता है । अब कन्ठी विषयिक शास्त्रीय प्रमाणों को देखिये—

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कन्ठलग्ना द्विधाकृती । दद्यात्तां क्षणमात्रेऽपि शिष्यो नैव त्यज्येत्पुनः ॥ सनत्कुमार संहिता । अर्थ--श्री तुलसी जी को पतली सी कण्ठ में लगी हुई, दो लर वाली माला गुरु शिष्य को प्रदान करे । श्री गुरुदेव जी से प्राप्त कर शिष्य फिर कभी एक क्षण के लिये भी कण्ठी का त्याग न करे । त्यागने में महान दोष लगता है । और भी देखिये--कण्ठे माला धरोयस्तु मुखे रामं सदोच्चरेत् । गानं कुर्यात्सदा भक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः ॥ पद्मपुराण उ० खं० अ० ८ श्लो० ७ और त्रिदण्डी जी द्वारा प्रकाशित वार्तामाला पृ० ५ से । अर्थात्—जो भक्त कण्ठ में श्री तुलसी जी की माला (अर्थात् युगल कन्ठी) धारण करते हैं । और

मुख से सर्वदा श्री सीताराम नाम का उच्चारण करते हैं । तथा भक्तिभाव पूर्वक श्री सीताराम जी के दिव्यगुण लीला यश का गान करते हैं, वे श्री वैष्णव कहे जाते हैं । नोट--पाठक ध्यान दें । कि पंच संस्कारों में तुलसी जी की कन्ठी का ही प्रमाण मिलता है । और परम्परा में भी कन्ठी ही प्रमाणित है । तथापि मध्यकालीन महापुरुषों ने भगवत्प्रेरणा से देश काल परिस्थिति का विचार करके तुलसी जी का हीरा का प्रचार किया है । अस्तु हीरा और कन्ठी दोनों ही तुलसी के बनते हैं, इसलिए एक ही हैं । अपनी परम्परा से प्राप्त कण्ठी या हीरा दोनों ही एक समझ कर धारण करना चाहिये । कण्ठी और हीरा में भेद की भावना करना उचित नहीं है । यद्यपि श्री वैष्णवीय शास्त्रों में तुलसी की माला का ही प्रमाण है। हीरा की बिलकुल चर्चा नहीं है । तथापि मानव को उचित है कि भगवत्कृपा से प्राप्त बुद्धि से काम ले । कण्ठी और हीरा जबकि एक ही तुलसी के बनते हैं तब हीरा और कण्ठी में कुछ भी भेद नहीं है दोनों एक हैं । इतने पर भी भेद मानना बुद्धि की दरिद्रता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । बात केवल इतनी ही है कि हीरा में एक ही दाना होता है, कण्ठी में सौ दो सौ दाना होते हैं । और कोई अन्तर नहीं है । वर्तमान समय में तुलसी की शुद्ध माला मिलना कठिन पड़ता है । हीरा तो अपने आप भी सुविधा पूर्वक सभी बनाकर पहन सकते हैं । बाजारू कण्ठी के पहरने से तो हीरा कहीं अधिक उत्तम है । एतदर्थ कण्ठी हीरा को एक ही मानना चाहिये ।

तुलसी काष्ठ संभूतां माला वहति यो नरः । तद्देहे पातकं नास्ति सत्यमेत-न्मयोच्यते ॥ पद्म पु० क्रियायोगसार खं० अ० २४ श्लो० २७ पृ० ११०१ कलकत्ता मन सुख राम मोर द्वारा प्रकाशित । अर्थ--जो मनुष्य तुलसी काष्ठ से बनी हुई माला धारण करते (पहनते) हैं । उनके शरीर के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । यह हम सत्य सत्य कहते हैं । पुनः--तुलसी काष्ट संभूतां ये माला वहते द्विजः । अप्यशौचेप्यानाचारो मामेवैति न संशयः । स्कन्द पु० वैष्णव खं० मार्गशीर्ष मास माहात्म्य अ० ४ श्लो० २ में भगवान के वचन हैं । कि--तुलसी काष्ट (लकड़ी) से बनी हुई माला को द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री वैश्य धारण करते हैं । वह किसी भी अनाचार या अशौच की विषम परिस्थिति में शरीर त्याग करें । वह मुझे प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं हैं । पुनः--तुलसी काष्ट मालां तु कण्ठस्थां वहते तु यः । अप्यशौचोप्यनाचारो भक्त्या याति हरेर्गृहम ॥१०॥ तुलसी काष्ट मालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः । दृष्ट्वा नश्यंति दूरेण वाद्भूतोतं यथा दलम् ॥१८॥ तुलसी पत्र गलितं

यस्तोयं शिरसा वहेत । सर्व तीर्थेषु स स्नातश्चांते याति हरेर्गृहम ॥२७॥ पद्म पु० ब्रह्माण्ड खं० अ० २२ श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई की प्रकाशित । जो भक्त तुलसी काष्ट से बनी हुई माला को कण्ठ में धारण करता है, वह चाहे पवित्र हो अथवा अप-वित्र हो, भगवान् के धाम को जाता है ॥१०॥ जिस प्रकार वायु (हवा) को देखते ही बादलोंके दल उड़ जाते हैं । इसी प्रकार तुलसी काष्ट माला को देखकर यमदूत भग जाते हैं ॥१८॥ तुलसी दल पड़े हुये जल से जो मनुष्य स्नान करता है, उसको सब तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है । और शरीर त्यागने के पश्चात् भग-वद्धाम को जाता है ॥२७॥ यह बाइसवाँ अध्याय पूरा देखना चाहिये ।

तुलसी काष्ठ निर्माण मालां गृह्णाति यो नरः । पदे पदेऽश्वमेधानां लभते निश्चितिं फलम् ॥ इति वाचस्पत्यकोष (बृहत् संस्कृताभिधान) तुलसी शब्दान्तर गत क्रिया योग सार खं० पद्म पु० अर्थ--तुलसी काष्ट की माला बनाकर जो मनुष्य धारण करता है, उसको पग पग में अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है । यह निश्चय है । और भी—न धार्या सततं योहि श्री तुलसीद्वियष्टिका । तां त्यजन्यपुरुषो मूढ़ो भ्रष्ट संस्कार एव हि ॥ यस्य कण्ठे न लग्ना वै वैष्णवस्य च दुर्मते । तुलसी राजते सोऽथ नाममात्रेण वैष्णवः ॥ नारद पाञ्चरात्रे श्री मद्वाल्मीकि संहिता अ० ६ श्लोक ६८-६९ । दो लरकी तुलसी की कंठी कंठ में सर्वदा धारण करना चाहिये । सद्गुरु से प्राप्त करके जो मूढ़ कंठी धारण नहीं करता वह संस्कार भ्रष्ट होता हैं यह निश्चय जानो ॥६८॥ जिस वैष्णव के कंठ में दो लर की कण्ठी नहीं लगी रहती है । वह दुर्मति नाम मात्र का वैष्णव है ॥६६॥ और जो मनुष्य सद्गुरु से प्राप्त करके कंठी का परित्याग करता है, उसके लिये कहा गया है कि—तस्यस्पृष्टमवन्नादि न ग्राह्यं वैष्णवैः क्वचित् । दूरं चाण्डालवत्याज्यो द्विज कर्म बहिष्कृतः ॥ बाल्मीकि संहिता अ० ६ श्लो० ७० । अर्थ--उसके हाथ का दिया हुआ अन्न कभी नहीं खाना चाहिये । दूर से ही चाण्डालवत छोड़ दे और वह द्विज वैष्णव कर्मों के करने का अधिकारी नहीं है । अस्तु श्री वैष्णवों को सद्गुरु से प्राप्त करने के बाद कभी भी कंठी का त्याग न करके सर्वदा पहिरना चाहिये ॥ गतिबोध उत्तरार्द्ध पृ० ७८-८१ ।

तुलसी संनिधौ प्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर । न तेषां नरकक्लेशः प्रयाति परमांगतिम् ॥ अगस्त संहिता अ० ६ श्लो० ४१ । अर्थ—हे मुनीश्वर ! जो तुलसी वृक्ष के निकट शरीर छोड़ता है । तो उसे नरक का क्लेश सहना नहीं पड़ता है । परमगति (मोक्ष) को अर्थात भगवद्धाम को प्राप्त करता है । और कहा गया है कि--यस्य स्यत्तुलसी पत्रं मुखे शिरसि कर्णयोः । मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ तस्यस्वामी न भास्करिः ॥८॥ प्राप्नोति मृत्युकाले यस्तोयं पातकवानपि । तुलसीपत्र गलितं

स्याति हरि सन्निधिम ॥६॥ तुलसी मृतिका पुण्ड्रं यो मृत्यु समये वहेत । स मुक्तः सकलैः पापैः परं गच्छति चक्रिणा ॥७॥ पद्म पु० क्रिया योगसार खं० अ० २५ श्लो० ६-७-८ वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित । गतिबोध पृ० ८५ । अर्थ--मृत्युकाल में यदि तुलसी दल (पत्ता) या तुलसी मिश्रित जल मुख में छोड़ दिया जाये, तो पापात्मा भी निश्चय ही भगवद्धाम को प्राप्त होता है ॥६॥ तुलसी वृक्ष की जड़ में से मिट्टी लेकर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाने वाला भक्त मुक्त हो जाता है । उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह भगवान् के निकट प्राप्त होता है ॥७॥ हे द्विज श्रेष्ट ! मरते समय जिसके मुख में शिर में या कान में तुलसी दल रक्खा हो, तो उसके स्वामी यमराज नहीं होते अर्थात उसके कर्माकर्म का निर्णय यमराज नहीं करते । वह भगवत्कृपा का अधिकारी होता है ॥८॥ कंठी धारण करने का निम्नलिखित श्लोक गरुड़ पुराण का है । कि—तुलसी काष्ट संभूते माले विष्णुजनप्रिये । बिभर्मि त्वा-महंकण्ठे कुरुमां राम वल्लभाम् ॥ अर्थात् हे तुलसी काष्टोद्भव माले ! हे वैष्णव भक्त प्रिये ! मैं आपको कंठ में धारण करता हूँ । आप हमें श्री राम जी का प्रिय दास बना देवें । श्री रामसार संग्रह पृ० ६१ । ले० श्री रामटहलदास जी दारागंज प्रयाग। अब भगवदायुधों के छाप की चर्चा की जाती है ।

* धनुषर्बाण चक्रादि की छाप का प्रमाण *

तिलक कंठी के पश्चात् भगवान् के आयुध धनुष बाण शंख चक्रादिकों की शीतल या तप्त छाप लगानी चाहिये । शीतल छाप लगाने से फिर नित्य ही लगाना चाहिये । और तप्त छाप तो संस्कार होते समय एक बार ही लगाने से फिर दोबारा लगाने की आवश्यकता नहीं रहती है ।

नोट--सन्त महात्माओं से निवेदन है कि शिष्य को पंचसंस्कार करते समय ही अपनी उपासना के अनुसार धनुषबाण अथवा शंखचक्रादि की छाप देना चाहिये। उस समय भगवदायुधों की छाप नहीं लगाने से चार संस्कार ही होते हैं । एक संस्कार की कमी रह जाती है । शिष्य बनाने वाले महानुभाव आयुधों की छाप लगाने में आलस्य करते हैं, यह भारी भूल है । बड़े बड़े मन्दिरों में पर्व अवसर पर एक ही दिन में सैकड़ों हजारों मनुष्यों का दीक्षा संस्कार होता है । समयाभाव के कारण उस समय छाप नहीं लग पाती, परन्तु दीक्षा देनेवाले महानुभावों को उचित है कि पुनः समय पाकर छाप अवश्य लगादें । यह उत्तरदायित्व गुरू जी का है । शिष्य को क्या पता कि हमें क्या करना चाहिये । यदि शिष्य को यह ज्ञान हो कि हमें क्या करना चाहिये क्या नहीं । तब तो फिर वह शिष्य ही क्यों बनेगा । गुरुवरण करने का एक तात्पर्य यही है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान हो जाये । एक बात यह

भी है कि मध्यकालीन कुछ समय से यह परम्परा चल रही है कि छाप द्वारिका जी में जाकर ली जाये। यह परम्परा सर्वथा अनर्गल है। वैष्णवीय शास्त्रों में ऐसी आज्ञा नहीं है कि कंठी, तिलक, मन्त्र, नाम ये चार संस्कार गुरू जी करें। और एक छाप द्वारिका में हो। तीर्थ, धाम दर्शन की भावना से जाना तो अति उत्तम है। जाते हैं जाना चाहिये। किन्तु छाप तो अनिवार्य रूपसे गुरू जी को ही लगाना चाहिये। कितने शिष्यों के तो जीवन भर में न द्वारिका जाने का समय मिल पाता न छाप लग पाती है। यह भारी दोष गुरू बनाने वालों पर रहता है। प्रथम बात तो यही है कि एक बार में उतने ही व्यक्तियों का संस्कार किया जाये जितने का सविधान हो सके। यदि परिस्थिति वश अधिक व्यक्तियों का संस्कार करना हो पड़े तो उन्हें बतादे कि छाप बाद में अवश्य ले लेना भुलाना नहीं।

छाप अपने इष्ट रूप के आयुधों की ही लगानी चाहिये। सभी को यह अनिवार्य नहीं है कि सभी आयुधों की छाप लगावें। क्योंकि भक्त को अपनी भावनानुसार ही भगवत्प्राप्ती होती है। सभी भक्तों को भगवान् एक ही रूप में नहीं अपनाते। तब सभी भक्त एक प्रकार की ही छाप धारण करें यह अनिवार्य नहीं रह जाता है। भगवान् श्री सीताराम जी के उपासक भक्तों को धनुष बाण तथा चन्द्रिका मुद्रिका इत्यादि की छाप अपनी श्री गुरु परम्परा के अनुसार शिष्य को भी देना चाहिये। अन्य भगवद्रूपों के उपासकों को अपने इष्ट रूप के आयुधों शंख चक्रादिकों की छाप लेना चाहिये। यद्यपि ये अनिवार्य या आवश्यक नहीं हैं कि सभी भक्त सभी आयुधों की छाप लगावें. तथापि बीच में ऐसी परम्परा कुछ दिन चल पड़ी थी कि सभी को सभी आयुधों की छाप लगानी चाहिये। यद्यपि यह बात सर्वथा सत्य है कि भगवान् एक ही हैं, अनेक नहीं। तथापि सत्यसंकल्प होने के कारण भक्तों की भावानानुसार अनेक रूप धारण किये हैं। वह सभी रूप नित्य हैं, उनका नाश नहीं होता। और भक्त को भावनानुसार ही भगवद्धाम में भगवत्प्राप्ति करता है, तो फिर भक्तको भावना के विपरीत व्यवहारों की परम्परायें माननीय कैसे होंगी। अस्तु दीक्षा संस्कार करने वालों को अपनी मान्यता के अनुसार ही भगवदायुधों की छाप लगानी चाहिये। अब छाप विषयिक शास्त्रीय प्रमाण पढ़िये।—प्रपत्ति रहस्य पृ० २८७ से। बाहु-मूले धनुर्बाणेनाङ्कितो रामकिङ्करः। शीतलेनाथतप्तेन तस्य मुक्तिर्न संशयः॥ शीतला-च्छतगुणं प्रोक्तं तप्ते च परिधार्यते। अङ्किताः सर्वकालेषु चतुर्वर्णाश्रमदयः॥ चक्रा-च्छतगुणं प्रोक्तं फलं बाणादि धारणम्। सर्वेषां रामभक्तानां राम मुद्राभिधारणम्॥ महाशंभु संहिता। अर्थ—बाहुमूल में धनुर्बाण से अंकित होकर जीव श्री राम जी का सेवक होता है। शीतल और तप्त दोनों प्रकार से लगाने (धारण करने)

से मुक्ति होती है। इसमें सन्देह नहीं है। शीतल की अपेक्षा तप्त धनुर्बाण धारण का अधिक महत्त्व है। चारों वर्ण और चारों आश्रमों में रहने वाले सभी श्री सीताराम भक्त स्त्री पुरुषों को सर्वदा इससे अङ्कित रहना चाहिये। चक्र से सौगुना फल धनुर्बाण धारण करने का होता है। अतः सभी श्री सीताराम भक्तों को इस श्री राम मुद्रा का धारण करना परमावश्यक है। पुनः देखिये--धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥ ३९ मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद संहिता अध्याय २६। प्रपत्ति रहस्य पृ० २२६ तथा गतिबोध उत्तरार्द्ध पृ० २५ से लिया गया है।

अस्यार्थः--धन्वना, धनुषा-अङ्किता इतिशेषः अतः स्तीव्राः पटवः परब्रह्म-प्राप्ति-प्रति बन्धकीभूतपापनिरसने समर्था वय समदः कामादिभिरनुष्ठितान् संग्रामान जयेम। नन्विन्द्रियाणां विषये मुख्ये कथं कामादि जयः-इत्याकांक्षायामुच्यते-धन्वना-धनुषा-कराङ्कनप्रभावेणैव-गाः इन्द्रियाणि जयेम्। इन्द्रियजयेन च प्रसंख्यानाख्यावस्था लाभे धन्वना आजिं अजन्ति गच्छन्ति, परब्रह्मगन्तारो, अस्मिन्निति आजिः मार्गः त जयेम धनुरङ्कनप्रसन्नेश्वरप्रदर्शितया सुषुम्नया नाड्या, वहिर्निष्क्रम्य अर्चिरादिमार्गेण परब्रह्म गच्छेम इत्यर्थः। यह व्याख्या स्वामी श्री भगवदाचार्य कृत है।

भाषार्थः--हम धनुष से गाय को जीते। धनुष से मार्ग को जीते। धनुष से तीव्र संग्राम को जीतें। धनुष शत्रु की कामना का बिनाश करता है। धनुष से सब प्रदेशों को जीतें। ग० बो० उ० खं० पृ० २५। मैं धनुष से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करूँ। मैं धनुष से जीवन यात्रा को सदाचार सम्पन्न करके भगवद्धाम का मार्ग तय करूँ। और मैं धनुष से काम क्रोधादिक षट बिकारों को साधन रूपी संग्राम में जीतूँ। धनुष शत्रु की कामना नाश कर हमें विजय प्राप्त करावे। और मैं धनुष धारण करने के प्रभाव से सभी प्रदेशों (लोकों) में निर्भय होकर भ्रमण कर पर-ब्रह्म श्री राम जी के परात्पर धाम नित्य अयोध्या (साकेत) को प्राप्त करूँ। मैं धनुष की छाप लगाने के प्रभाव से परमेश्वर श्री राम जी की प्रसन्नता से प्रदर्शित सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ऊर्ध्वगति को प्राप्तकर ब्रह्माण्ड भेदन कर शरीर से बाहर निकल कर अर्चिरादि मार्ग से परब्रह्म श्री सीताराम जी के निकट चला जाऊँ। स्वामी श्री भगवदाचार्य कृत व्याख्या के आधार पर लेखक का विचार। पुनः पंच सर्गीय महारामायण के सर्ग २ में--

तप्तेन बाँण धनुशांकित राम भक्तः ॥१०॥ यज्ञं च तीर्थ गमनं पितृदेव सर्वम्, कुर्वन्ति कर्म शुभकं श्रुतियो वदन्ति। ये नांकिता धनुशरैर्विफलं च सर्वम्, ये चांकिता

धनुः शरैश्च फलं सहस्रं ॥१७॥ चक्रांकते शतगुणं धनुष शरस्य, येश्चांकितोपि स च रामजनाग्रगण्यः । सारूप्यमेव लभवे किलतत्क्षणो वै रामः प्रियः प्रियतरोनुदिनं च मह्यम ॥१८॥ ते वै प्रसन्न मानस समुदार बुध्या तप्तं धनुः शरमिदं भुजयोः प्रकुर्यात । पूजां पुनः प्रकुरुते विविधैश्च रत्नै, तस्मिन्क्षणो भवति जीवन एव मुक्तः ॥२१॥ वामे करे च धनुषा न शरेण सव्ये, पश्चांकितोहि मनुजो नरलोक धन्यः । तस्मै नमन्ति शीर्षा दुहिणादि देवास्त, दर्शनेन मनुजा कलि कल्मषघ्न ॥२२॥ अर्थ—श्री सीताराम भक्त तप्त धनुष बाँण से अंकित होवें ॥१०॥ इस बात को वेद कहता है कि जिसके हाथ में धनुष बाण की छाप नहीं है । वह यदि यज्ञ तीर्थ अथवा पितृ देवतों का कर्म करता है । तथा और भी जो शुभ कर्म करता है वह सब निष्फल होते हैं । और धनुष बाँण की छाप लगाकर उक्त कर्म करता है, तो उन कर्मों का हजार गुना फल होता है ॥१७॥ शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती ! चक्र की छाप लगाने से जो फल होता है, उससे सौगुना फल धनुष बाँण की छाप लगाने वाले मनुष्य को होता है । और वह श्रीराम भक्तों में सर्वश्रेष्ठ है । धनुष बाँण को छाप लगते ही जीव उसी क्षण श्रीराम जी की सारूप्य मुक्ति का अधिकारी और श्री राम जी को प्रिय होता है, पुनः वह मुझे दिनों दिन अधिक प्रिय लगता है ॥१८॥ जो मनुष्य प्रसन्न मन से सम्यक् प्रकार उदार बुद्धि से अपनी भुजाओं में तप्त धनुष बाँण की छाप धारण करता है, तो वह उसी क्षण जीवनमुक्त हो जाता है, यह निश्चय जानो ॥२१ इस संसार में वह मनुष्य धन्य है, जो कि बायें हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में बाँण की छाप से अंकित होते हैं । क्योंकि उनको देवता नत मस्तक होकर प्रणाम करते हैं । और उनके दर्शन से कलियुग के पापी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं ॥२२॥ पुनः आनन्द रामायण मनोहर कां० सर्ग ७ श्लोक १०६ में बताया गया है कि--

राममुद्रांकितं दृष्ट्वा नरं ते यम किंकराः । पलायंते दशदिशः सिहं दृष्ट्वा गजायथा ॥

अर्थ--श्री राममुद्रा से अंकित मनुष्य को देखकर यम के दूत उसी प्रकार दशो दिशाओं में भाग जाते हैं, कि जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग खड़े होते हैं ॥ इस सर्ग के १०१ और १०२ श्लोक भी द्रष्टव्य हैं ॥१०६॥ गतिबोध पृ० २७॥ राम-मुद्रास्ति यद्देहे तं पापं स्पृशते न हि । १२ आ० रा० मनो० कां० सर्ग ७ ॥ ग० बो० पृ० २७ ॥ जिसके शरीर में श्रीराम मुद्रा (धनुष बाँण की तप्त छाप) वर्तमान रहती है. उसे किसी प्रकार का पाप लगता ही नहीं है । नोट--इसका तात्पर्य न समझ कर कोई भक्त जान बूझ कर पाप रत न होंगे । कि धनुष बाँण की छाप लगाने वाले को पाप लगता ही नहीं है, तो चाहे जो करते रहें । भगवत् भक्त का स्वरूप ही है कि बाहर भीतर से निष्पाप रहना । जानकर कभी भी पापकर्म न करने वाला

ही भक्त होता है। जान जान कर पाप करने वाले की भक्त संज्ञा ही नहीं रहती, तब भगवान् को उससे आवश्यकता ही क्या है। अस्तु धनुष बाण की छाप लगा कर पापों से सावधान रहकर भजन करने पर ही भगवत्कृपा का अधिकारी होगा।

श्री तुलसी साहित्य भाष्यकार पं० श्री श्रीकान्त शरण जी महाराज कृत प्रपत्ति रहस्य पृ० २६१-२६२ से।

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्याः दन्तो गोभिः सन्नधा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः संच विच द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसेन ॥ (यजु०२९।४८)

अर्थ- या =(जो) इषुः (बाण) सुपर्णम (सुन्दर को) वस्ते (धारण करता है) अस्याः (इस वाण के) दन्तः (फण) मृगः (शत्रुओं को ढूंढ़ ढूंढ़ कर मारने वाले हैं) या (जो) इषुः (बाण) गोभिः (वेद मन्त्रों से) सन्नधा (युक्त होकर) प्रसूता सती (अधिक बलवान होकर या भगवत् प्रेरित होकर) पतति (कामादि शत्रुओं को मारने के लिये बज्र के समान गिरता है) यत्रा (जिस बाण को धारण करने के लिये अथवा धारण करते ही) नरः (धर्मशील मनुष्य) सं (श्रद्धा के साथ) च [और] विन्द्रवंति [भगवद् भक्ति आदि शुभ प्रवृत्ति में अग्रसर बनते हैं) इषवः (बाण) अस्मभ्यम् (हमें) शर्म (कल्याण सुख] यंसन् (देवें)। अर्थात्—श्री राम बाण धारण करने से मुमुक्षु कामादि शत्रुओं से बच कर धर्मशील बनता है। और फिर मोक्ष आदि कल्याण का पात्र होता है।

ऋजीते परि वृङ्धिः नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधिब्रवितु नोऽदितिः शर्म यच्छत ॥ (यजु० २९।४९]

अर्थ—ऋजीते [हे सरल मार्ग से चलने वाले बाण] नः (हमें) परि-वृङ्धि (पापादि निषिद्ध कर्मों से तथा काम-क्रोधादि शत्रुओंसे बचाओ) नः हमारा] तनूः [शरीर) अश्मा [दृढ़] भवतु [हो] सोमः [सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी युक्त भगवान् श्री राम जी] नः [हमारी] अधिब्रवीत् [प्रशंसा करें] आदितिः [अवि-नाशी श्रीराम] नः [हमे] शर्म [मोक्ष सुख एवं श्रेष्ठ सुख] यच्छतु [देवें] अर्थात् इस बाण को धारण करने से मुमुक्षु पापों से बचता है। इसमें श्रीराम भक्ति करने के योग्य शरीर दृढ़ बनाने की शक्ति है और इसको धारण करने से प्रभु श्री राम जी प्रसन्न होते हैं. तथा परम सुखकर अपनी शरण में रखकर अन्त में अपनी प्राप्ति रूपी मोक्ष सुख देते हैं।

चक्राङ्कित जाननां तु ताप मुद्रा अपेक्षिता। चापबाणाङ्कितानां तु चक्र चिन्हं विवर्जितम्॥

चक्रादिक मुद्राओं की छाप लगाने के पश्चात् भी धनुष बाण की छाप लगने की अपेक्षा रहती है। परन्तु धनुष बाण की छाप लगने के बाद चक्रादिकों के चिन्हों का निषेध है। सनत्कुमार सं० अ० ३४, श्लो० ४

अस्तु यह परम्परा ठीक नहीं है कि जो भी वैष्णव द्वारिका जी दर्शनार्थ जाये तो चक्र की छाप अवश्य लगवाये। हाँ यह तो ठीक है की जिसके शरीर में धनुषबाण की छाप न लगी हो, तो शंख चक्रकी छाप इच्छानुसार ली जा सकती है।] परन्तु यह नियम सभी के लिए अनिवार्य नहीं है।

श्री नारद पञ्चरात्रान्तरगत वालल्मीकि संहिता में लिखा है कि— धन्वनेति जपन्मन्त्रं शारङ्गपाणि च संस्मरन्। बाहोर्वामस्य मूले तु धनुस्तापयेद्गुरुः ॥ तथा सुपर्णमित्यादिमृजीत इति चादरात। जपन्दक्षिणमूले तु बाणाभ्यामंकयेत्पुन: ॥ प्रपत्ति रहस्य पृ० २६२ से २६३ तक ॥

अर्थः— उपर्युक्त "धन्वना ... इस वेद मन्त्र का श्रद्धा समेत उच्चारण करके और शारङ्गपाणि भगवान् श्री राम का धनुषधारण किये हुये स्मरण करके सद्गुरु शिष्य के वामबाहु (बायें हाथ) के मूल अर्थात् जड़ में धनुष की तप्त—छाप लगावे। तथा "सुपर्ण...' और "ऋजीते '' इन दोनों मन्त्रों का श्रद्धापूर्वक जप करते हुये गुरु शिष्य के दाहिने हाथ के मूल में बाण मुद्रा को अंकित करे (धनुष को एक और बाण को दो बार छापना चाहिये) ॥ नोट— महानुभावों से निवेदन है कि यदि शिष्य कहे कि हम तप्त छाप नहीं लेंगे, तो भी शास्त्राज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिये यदि शिष्य अपनी हठरखना चाहे तो उसे वैष्णव दीक्षा ही न देना चाहिये। क्यों कि शिष्य को गुरु के निर्देश पर चलना शास्त्राज्ञा है, गुरु को अपने आधीन रखने का प्रमाण कहीं नहीं है। अस्तु दीक्षा देने वाले महानुभावों को शिष्यों की रुचि रखना आवश्यक नहीं है। शास्त्र विधि का पालन करना अनिवार्य है। जो व्यक्ति शिष्य बनने के पूर्व ही गुरु पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, वह भविष्य में क्या करेगा इसका विचार करके ही दीक्षा देना चाहिये। अन्यथा गुरु कहलाने वालों को पछताना पड़ेगा। जो लोग शिष्यों की रुचि कापालन करते हैं, वह शिष्य के सच्चे हितचिंतक नहीं हैं। सच्चा हितैशी वही गुरु है कि जो स्वयं भी शास्त्रानुसार चले और अपने शिष्य को भी शास्त्र सम्मत पथ पर चलावै ॥ धनुष बाण की छाप लगाने के बाद पंचामृत सेस्नान करवा कर चन्दन तुलसी पुष्प चढ़ाकर धनुर्बाण की पूजा करे। फिर इस प्रकार कहे कि—

> सुवर्ण रत्नाञ्चिमुज्वलं तं महाप्रभावैः परतः परम शरम्।
> सदैव श्री राघव दक्षिणे करे प्रकाशमानं तमहं भजामि ॥१॥
> निरन्तरं राघव वामबाहौ विराजितं दिव्यतमं विचित्रम्।
> यदंश सम्भूतमशेष सर्गं भजामि भक्त्या च धनुर्धुरीणम् ॥२॥
> विचित्र माणिक्य विभावितं वरं भजामि तूणीरमहं निरन्तरम्।

रघूत्तमस्यैक कटि प्रदेशे समुल्लसन्तं शरसंघ संयुतम् ॥३॥
निराकृताशेष सुदाम संभवं स्वकाशतश्चन्द्रमरीचि निर्जितम् ।
विपक्ष पक्ष क्षपिणं क्षितीश्वरं भजामि रामायुध खड्गमुत्तमम् ॥४॥
प्रपन्नतापार्ति हरं प्रसन्नं प्रभासमानं वपुषा परेश्वरम् ।
सदैव श्री राघव सन्निधानं भजामि श्री पावनमायुधालयम् ॥५॥
समस्त दुःखौघ विनाश हेतुं सुपञ्चकं चायुध संस्तवं परम् ।
पठेद्य इच्छेदभयं सुखास्पदं तथैव रामस्य सुख प्रसादजम् ॥३॥

इति स्वामि श्री युगलानन्यशरण जी कृतं श्री रामायुध-पञ्चकस्तवम् ॥ दीक्षा पद्धति पृ० ५४ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करके शिष्य को समझा देवे कि धनुर्वाण श्री रामायुधों में सर्व श्रेष्ठ हैं । "आयुधानामहं धनुः " भगवान् का श्री मुख वचन है । इसलिये अब इन्हें धारण कर तुम निष्पापहो गये, अतएव निर्भय पद को पाचु के, अब अन्य छाप लेने की आवश्यकता नहीं रही ॥ अमररामायण में लिखा है कि—चन्द्रिके द्वे च सीतायाः संस्कृती शुभे । धनुर्वाणौ तु रामस्य नाम मुद्रा तु पञ्चमः ॥ सर्ग १ श्लो० १४२ ॥ अर्थ— श्री याज्ञवल्कि जी ने श्री भरद्वाज जी से कहा कि—चन्द्रिका और मुद्रिका ये दो तो श्री सीता जी के शुभ संस्कार कहे जाते हैं । और धनुष एवं वाण श्री राम जी के संस्कार कहे जाते हैं । औरपाँचवें श्री सीताराम नामकी छाप लगाना ये पंचमुद्रा कहे जाते हैं । पुनः इन मुद्राओं को धारण करने की महिमा बताते हैं । चिन्हितो पञ्चमुद्राभिः सर्वलोकेषु पूजितः । तेषां चिन्ह विनेवाय मात्मा पूतो न जायते ॥१४४॥ अर्थ—जो व्यक्ति इन पंचमुद्राओं से चिन्हित होता है, वह संपूर्ण लोकों में पूजित होता है । इन पंचमुद्राओं की छाप के विना आत्मा पूर्ण पवित्र नहीं होता है ॥ तप्ता वेतौ धनुर्वाणौ सीतायाः मुद्रिका तथा न तापये नाममुद्रां चन्द्रिकां नैव ताप तापयेत् ॥१४५॥ अर्थ—धनुष वाण और श्री सीता जी की मुद्रिका ये तो तपाकर लगाने चाहिये और नाम तथा चन्द्रिका को विना तपाये ही शीतल छाप लगावै ॥

राम क्षेत्रे मृदा तेद्वे धारये त्तिलकं यथा । पञ्चभिश्चिन्हितो यो सौ राम भक्तेषु गीयते ॥१४५॥ अर्थ— श्री सीताराम जी के धाम (श्री मिथला- अवध, चित्रकुट) की मिट्टी से जिस प्रकार तिलक किया जाता है । उसी प्रकार इन पंचमुद्राओं से जो शीतल छाप लगाते है, वे श्री रामभक्त कहै जाते हैं ॥ प्रथम ॐ लगाकर फिर इन मुद्राओं के नाम में चतुर्थी और अन्त में नमः लगा देने से मुद्राओं के नाम ही मंत्र वन जाते हैं । इन्हीं मंत्रों से इन मुद्राओं का पूजन करे ॥१४६॥ षोड़सो प्रकार पूजन करके सतशिष्य के शीतल और तप्त छाप संस्कार करे । फिर शिष्य से भी उसी प्रकार पूजन करवावै ॥१४७॥ फिर भगवान श्रीशंकर जी ने धनुर्वाण की स्तुति की ॥

रामब्रह्म राजपुत्र हस्तेऽजस्रं विराजितौ । सूर्यानन्त प्रभावन्तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५० ॥ असुराणां घातकौ च सुराणांभय नाशकौ ; निहितेभ्यो मोक्षदौ च धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५१ ॥ स्वचिन्ह बाहुमूलेभ्यः सीताराभांघ्रि भक्तिदौ । श्रीराम मुष्टि सौभाग्यौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५२ ॥ ध्यानानन्द करौ दिव्यौ योगीनांध्यान दुर्लभौ । नित्यं रामायुधाख्यौ तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५३ ॥ ममशूलाच्छक्ति शूलान्विष्णु चक्रात्परात्परौ । दिव्यन्तौ राममुष्ट्या श्री धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५४ ॥ श्रीराम वनिताभिश्च तद्विश्लेषे समर्चितौ । स्पृशन्तीनां मोद करौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५३ ॥ असुरेभ्यो भीतकेभ्यः सुरेभ्यः शरणं प्रदौ । भूमिभार हरावेतौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१५७॥

इति धनुर्बाणाष्टकम् ॥

अर्थ--श्री पार्वती जी समेत श्री शिव जी प्रार्थना करते हैं कि--हे परात्परब्रह्म श्री रामचन्द्र जी के करकमल में विराजने वाले अनन्त सूर्यों के समान प्रभा वाले (प्रकाशयुक्त) धनुर्बाण जी हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १५० ॥ हे असुरों के नाश करने वाले ! देवताओं के भय नाशक ! आपको धारण करने वाले को मोक्ष देने वाले, धनुर्बाण जी हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १५१ ॥ जो आपके चिन्हों को अपने बाहुमूल में धारण करते हैं, उनको श्री सीताराम जी के चरणों की भक्ति देने वाले' श्री राम जी की मुट्ठी में रहने का सौभाग्य प्राप्त धनुर्बाण जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५२ ॥ भक्तों को ध्यान के दिव्य आनन्द देने वाले षटकर्मक योगियों के ध्यान में जो अत्यन्त दुर्लभ हैं, श्री राम जी के नित्य आयुध धनुर्बाणों को नमस्कार करता हूँ ॥ १५३ ॥ जो मेरे त्रिशूल से शक्ति के शूल से, विष्णु के चक्र से, तथा सभी आयुधों से परात्पर हैं । और जो सभी ईश्वरों के भी महाकारण दिव्य सच्चिदानन्द मय विग्रहवान श्री राम जी के हाथ में रहने वाले, श्री धनुर्बाण जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५४ ॥ प्रियाम के वियोग में श्री राम जी की पत्नियों ने जिनका सम्यक् प्रकार पूजन किया ! स्पर्श करने पर महान आनन्दित हुई, इस प्रकार प्रभावयुक्त श्री धनुर्बाण जी को मैं नमस्कार करता हूँ । १५६ ॥ भयभीत हुये असुर देवतादि सबको शरण देने वाले, भूमि के भार को हरण करने वाले श्री

धनुर्वाण जी को मैं नमस्कार करता करता हूँ ॥ १५७ ॥ उसके बाद श्री शिव पार्वती जी ने श्री जानकी जी की चन्द्रिका और मुद्रिका की प्रार्थना की ॥

यस्याश्चांशेन रमोमा सावित्र्यादि शक्तयः । संभवन्ति सदाहं श्रीचन्द्रिकां लकृतीं स्तुमः ॥ १५७ ॥ श्रीरामध्यानगम्य च मुमुक्षुभ्यो गतिप्रदम् । सीताशिरोभूषण श्रीचन्द्रिकाख्यं नमाम्यहम् ॥ १५६ ॥ श्रीरामाक्षि भोगरूपं चन्द्रकोटि प्रभाधरम् । सीता शिरोभूषण श्री श्चन्द्रिकाख्यं नमाम्यहम् ॥ १३० ॥ समाप्ति का भूषणानां विना न्युनं करीतुया । ललाटिका परं ध्येया तां सीतालंकृतिं स्तुमः ॥ १६१ ॥ सीतारामयोर्युगलोपासकानां ललाटको । तिलकेभ्राजमाणां तां चन्द्रिकाख्यां नमाम्यहम् ॥ १४२ ॥ स्वरश्मि मण्डले दिव्ये दीप्यन्ती तरलप्रभे । चन्द्रभानु तिरस्कृत्य तां सीतालंकृतिं स्तुमः ॥ १६३ ॥ यस्याश्चिन्हं भालमध्ये विधाय रामसीतयोः । भावुका रसिकत्वं हि यान्ति तांचन्द्रिकां स्तुमः ॥ १६४ ॥ यस्याश्चिन्हं भालदेशे विधायतिलके शुभे । भवेद्रामस्याति प्रियस्तां सीतालकृतिं स्तुमः ॥ १६५ ॥ इति श्रीचन्द्रिकाष्टकम् ॥

अर्थ--जिनके अन्श से रमा (लक्ष्मी) उमा (पार्वती) और सावित्री आदि शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं । उन श्री सीता जी के अलंकार स्वरूपा श्री चन्द्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५८ ॥ श्री राम जी के ध्यान में निवास करने वाली, मुमुक्षुओं को गति देने वाली श्री सीता जी के शिर का भूषणस्वरूप श्री चन्द्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५६ ॥ श्री राम जी के नेत्रों को सुख भोग देने वाली, करोड़ों चन्द्रमाओं के प्रकाश को धारण करने वाली, श्री चन्द्रिका नाम से प्रसिद्ध, श्री सीता जी के शिरभूषण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६० ॥ जिनके विना सब भूषण न्युन प्रतीत होते हैं । सब भूषणों की अवधि, श्री सीता जी के मस्तक के भूषण (शृंगार) रूप में जिनका ध्यान होता है ऐसी श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६१ ॥ श्री सीताराम जी के युगल उपासकों के मस्तक में तिलक रूप से शोभित होने वाली, श्री चन्द्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६२ ॥ अत्यन्त शीतल प्रकाशमण्डल के बीच में स्वयं प्रकाशमान होने वाली, चन्द्र सूर्यों के

प्रकाश को तिरस्कार करने वाली, अर्थात् चन्द्र सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाश-युक्त, श्री सीता जी के भूषण स्वरूपा श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६४॥ जिनके चिन्ह को भालमध्य तिलक के बीच में धारण करने से श्री सीताराम जी के भावुक रसिकता को प्राप्त करते हैं। उन श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥१६४॥ जिनके चिन्ह को भालमध्य तिलक में धारण करने से भक्त श्री राम जी का अत्यन्त प्रिय होता है। इस प्रकार श्री सीता जी के भूषण शृंगार स्वरूपा श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६५ ॥

सीताकरसरोजस्य दले किल विराजितम् । स्वङ्गुलीभूषणं तस्मान्मुद्रिका-ख्यां नमाम्यहम ॥ ॥ १६६ ॥ श्रीरामो योगिभिर्ध्येयः सोपिध्यायति यांसदा । सीतानामांङ्क संयुक्ता मुद्रिकां प्रणमाम्यहम् ॥ १६७ ॥ तेजो मण्डल सन्दर्भे भक्तानां हृदयेतमः । हारिणि प्रकुरू श्रेयो जानकी मुद्रिके हिमे ॥ १६८ ॥ कृपापात्रस्य जानक्या जनस्य मस्तकोपरि । वर्तिनीं सर्वलोकेष्वभयदां मुद्रिकां स्तुमः ॥ १६९ ॥ आदर्श वर्तुलाकारे कपोले श्याम सुन्दरे । स्फुरतीं राजपुत्रस्य दक्षे सीतोर्मिको स्तुमः ॥ १७० ॥ यस्या अंशोद्भवो माया जगदुत्पादितुं क्षमा । सीताङ्गुल्यामिका साने श्रेयो दिशतु सर्वदा ॥१७१ ॥ अंगुष्ठस्यापि तर्जन्यां मध्यमा या मनोहराम् । रामस्य राजपुत्रस्य जानक्यामुद्रिका स्तुमः ॥ १७२ ॥ कनिष्ठाया उर्मिकां चा नामिकायास्तथैव च । बिभ्रन्तीं मण्डलं भौमिजानक्या करयोर्द्वयोः ॥ १७३ ॥ चान्द्रिका मुद्रिका बाण धनुषां च स्तवान्तिवम् । उमा-महेश्वरोवतं स्त्रियो वा पुरुषा अपि ॥ १७४ ॥ पठन्ति नियमान्नित्य सायं प्रातस्तु भक्तितः । सायुज्यं ते प्राप्नुवन्ति सीताया राघवस्य च ॥ १७५ ॥ इति श्री शंकर कृते श्री अमररामायणे सीताराम रत्नमञ्जूषायां पार्वती संस्कारो-नाम प्रथम सर्गः ॥

अर्थ - (श्री चन्द्रिका जी का अष्टक कहकर अब मुद्रिका जी का अष्टक कहते हैं।) श्री सीता जी के करकमल दल में विराजने वाली अंगुली भूषण स्वरूपा श्री मुद्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१६६॥ सब योगियों से ध्येय जो श्री राम जी सर्वदा जिसको ध्यान करते हैं। श्री सीतानाम से अंकित ऐसी श्री मुद्रिका जी को मैं

प्रणाम करता हूँ ॥ १६७ ॥ अपने महान तेज से भक्तों के हृदय के अन्धकार को दूर करने वाली, हे श्री जानकी मुद्रिके आप मेरा कल्याण करें ॥ १६८ ॥ श्री सीता जी के परम कृपापात्र भक्तों के मस्तक पर रहने वाली और संपूर्ण लोकों को अभय देने वाली श्री मुद्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६९ ॥ शीशा के समान चमकने वाले श्याम सुन्दर राजकुमार श्री राम जी के कपोलों पर चमकनेवाली परम कुशला श्री सीता जी की मुद्रिका की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १७० ॥ जिनके अंश से उत्पन्न होकर माया जगत को उत्पन्न पालन प्रलय करने में कुशल होती है । ऐसी श्री सीता जी की अंगुली भूषण श्री मुद्रिका जी मेरे लिये सर्वदा कल्याण प्रद होवैं ॥१७१॥ श्री जानकी जी के अंगुष्ठ (अँगूठा) तर्जनी मध्यमा अंगुलियों में रहकर श्री राम जी के मन को चुरा लेने वाली, श्री मुद्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १७२ ॥ श्री जानकी जी के दोनों कर कमलों की कनिष्ठिका अनामिका अंगुलियों में रहकर प्रकाश का मण्डल बाँधने वाली, श्री मुद्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७३ ॥ श्री उमामहेश्वरजी की को हुई चन्द्रिका मुद्रिका धनुष बाण की स्तुति को जो स्त्री अथवा पुरुष ॥ १७४ ॥ सन्ध्या और प्रातः समय नित्य नियम से पाठ करते हैं । वे श्री सीताराम जी की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥ १७५ ॥ इस प्रकार से प्रार्थना करके चन्द्रिका मुद्रिका धनुषबाण की छाप देने के बाद श्री सीताराम जी का युगल मन्त्रराज प्रदान करे ।

नोट—यद्यपि पंच संस्कारों में ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक, कण्ठी धनुर्बाण चन्द्रिका मुद्रिका शंख चक्रादिक की छाप लगाने का शास्त्रीय प्रमाण है । तथापि यह अनिवार्य नहीं है कि सभी लोग सभी छाप लगावें । जो भक्त जिस संप्रदाय के अनुयायी हों, तदनुसार परम्परागत मान्यता के अनुकूल पंच संस्कार करें । यह बात अवश्य ही है कि श्री वैष्णवीय दीक्षा में पंच संस्कार अवश्य ही करना चाहिये ॥ अब चक्रादि के छाप के प्रमाण देखिये ।

अग्नि तप्तेन चक्रेण ब्राह्मणो बाहुमूलयोः ॥ ३३ ॥ होमाग्नि संतप्तं पवित्र लांछितो मूले च बाह्वो परमात्मनो हरेः । तारयित्वा भवसागरं महत्परंपदं याति परेश लोकम् ॥ ७२ ॥ अङ्कयेतप्तचक्राद्यै रात्मनो बाहुमूलयोः । कलत्रापत्य भृत्येषु पश्वादिषु च अङ्कयेत ॥ ७३ ॥ पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० २५२ आनन्द प्रेस पूना से प्रकाशित ॥ पुनःतस्माचक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद्विजः सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च श्रुति चोदनात् ॥ ३३ ॥ वृद्धहारीतस्मृति धर्मशास्त्र अ० २ ॥ ग० वो० पृ० १८-१९॥ युक्त श्लोक में ब्राह्मणों को तप्त चक्र को छाप का विधान और सभी वर्ण की स्त्रियों

को भी छाप लगाना कहा है । जिन्हें मुक्ति की कामना है । पुनः—आश्रमाणां चतुर्णां च स्त्रीणां च श्रुति चोदनात् । अंकयेच्चक्र शंखकाभ्यां विधानतः ॥ ४१ ॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ८ ॥ यदि कोई यह कहे कि यह छाप का विधान विरक्तों के लिये है गृहस्थों को छाप नहीं लेना चाहिये । तो कहते हैं कि—विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकाम एव च । तापादिना विमुक्तःस्यात्पातकैः कोटि जन्मजैः ॥ बृहद्ब्रह्म संहिता पाद १ अ० ४१ श्लो० ८ ॥ और-तप्तमुद्रांकितः कुर्यात् मतं वैष्णवसंम्तम् । स्कन्दपुराण सह्याद्रिखण्ड उत्तर रहस्य अ० ७- श्लो० ५४ ॥

यद्यपि भगवान् श्री हरि जीव मात्र के परमोपास्य हैं तथापि ब्राह्मणों के तो एकमात्र देवता भगवान् ही हैं ! विचार कीजिये कि चारों वर्णों में ब्राह्मण ही श्रेष्ठ माने जाते हैं ऐसा क्यों, जब कि चारो वर्णों की सन्तानोपत्ति पालन इत्यादि सभी क्रियायें एवं शरीर के अंग समान हैं । भगवान् के सम्बन्ध से ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता है ध्यान दीजिये कि—शुद्ध सत्वमयो विष्णुः कल्याण गुण सागरः । नारायणों परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं हरि ॥ पद्मपुराण उ० ख० म० २८२ श्लो० ६० ॥ ग० वो० पृ० २७ ॥ अर्थ--शुद्ध सात्विक वृत्तिवाले विष्णु भगवान कल्याण और गुण के सागर हैं । यही नारायण हैं यही परंब्रह्म हैं और प्रधानतया ब्राह्मणों के एकमात्र आराध्य देवता हैं । तथापि वर्तमान समय में ब्राह्मण भगवान् श्रीहरि को विस्मृत कर अन्य देवी देवताओं की उपासना करते हैं यह भारी भूल है यह नहीं सोचते कि इन देवताओं की आराधना से हमारा पतन हो रहा है । फिर देखिये कि--पूजनीयो हरि नित्यं ब्राह्मणानां विशेषतः । तस्मात् ब्राह्मणों नित्यं विधिवत् पूजयेद्धरिम् ॥ २६ ॥ विष्णुचक्र विहीनंतु यः श्राद्धे भोजयिष्यति । व्यर्थं भवति तत्सर्वं निराशाः पितरोगताः ॥ ३७ ॥ हुताग्नि तप्त चक्रेण शरीरं यस्य चिन्हितम् । तस्य तीर्थानि यज्ञाश्च बसंतिनात्र संशयः ॥ ४१ ॥ पद्मपुराण उ० खं० म० २५२ आनन्द प्रेस पूना से प्रकाशित ग० वो० पृ० २८-२६ ॥ युक्त २६ वें श्लो० में ब्राह्मणों को अनिवार्य रूप से विशेष विधिपूर्वक भगवान् श्री हरि की पूजा का विधान बताया है । और ३७ श्लोक में कहा गया कि श्राद्ध में यदि बिना चक्रांकित ब्राह्मण को भोजन कराया जाये तो, वह श्राद्धकर्म व्यर्थ हो जाता है । इससे निश्चय हो गया कि भगवदायुधों के चिन्हों से रहित ब्राह्मण को श्राद्ध भोजन पाने का अधिकार नहीं है । इससे यह निर्णय हुआ कि श्री वैष्णवीय दीक्षा के पंच संस्कार से संस्कृत ब्राह्मण को ही श्राद्ध भोजन का अधिकार है ॥

नोट--इतने पर भी स्मार्त ब्राह्मण श्राद्धकर्म करवाते समय कंठी तिलक का

निषेध बतलाकर यजमान की कंठी भी उतरवा देते हैं । जबकि उन्हें स्वयं श्राद्धकर्म में भाग लेने का भी अधिकार नहीं है । यह अनुचित है । वैष्णव भक्तों को भत्ता भत्तवादी या मद्य पीने वाले ब्राह्मण को अपना उपरोहित नहीं बनाना चाहिये । मद्यपान करने वाले ब्राह्मण का करवाया हुआ श्राद्ध या तर्पण पित्रों को प्राप्त कैसे हो सकता है । क्यों कि उनका मुख स्वयं ही दक्षिण दिशा को है, तब उनका यजमान भी उत्तराभिमुखी (स्वर्गगामी) कैसे होगा । कोई कोई कर्मकाण्डी पंडित कहा करते हैं कि--तप्तछाप लगाये हुये व्यक्ति को कर्मकाण्ड करने का अधिकार नहीं है । क्यों कि अंग भंग हो गये हैं । वह श्रीमान ध्यान दें ।-

जिस प्रकार प्रधानतया द्विजातियों के षोड़स संस्कार स्मृति कारों ने माने हैं । उसी प्रकार श्री वैष्णवों के पंच संस्कार भी स्मृतिकारों ने अनिवार्य रूप से माने हैं। तब पंच संस्कारान्तर्गत भगवदायुधों की छाप लगने पर व्यक्ति अंग भंग किस प्रमाण से हो गया । यदि प्रमाण रहित तर्क से कहा जाये तो भी सिद्ध नहीं होगा कि भगवदायुधों की छाप लगाने वाला अंग भंग है । अब अंग भंग का शाब्दिक मोटा अर्थ है कि प्रकृति द्वारा निर्मित किसी भी अंग का भंग (छेदन) होना । तब विचार कीजिये कि प्राकृतिक अंग संपूर्ण किसके हैं, किसके भंग हो गये हैं । तब पता लगेगा कि संसार में सभी मनुष्य अंग भंग हैं । क्यों कि सभी के प्राकृतिक अंग किसी न किसी प्रकार भंग हो ही जाते हैं। हिन्दू समाज में सभी का कर्णवेध होता है अर्थात् कान को सूजी (सुई) से छेदा जाता है । प्रकृति निर्मित बाल कटवाये जाते हैं । नख भी छेदन किये जाते हैं । फोड़ा होने पर अथवा अन्यान्य रोगों में हाथ, पैर, पेट, आँख, सर्वांग का आप्रेशन आवश्यकतानुसार होता है । तब पं० जी यह नहीं कहते कि अंग भंग हो गया है । रसोई बनाते समय सभी माता बहिनों के हाथ कभी कभी जल जाते हैं । विदेशया तीर्थ यात्रा में पं० जी भी स्वयं ही भोजन बनाते होंगे, तो कभी कभी असावधानी से उनका हाथ भी जल जाता होगा । तब तो वह भी अंग भंग हो गये । अब कहिये जब कि अंग भंग यजमान श्राद्ध नहीं कर सकता है, तो फिर अंग भंग व्यक्ति, उपरोहित्य कर्म कराने का अधिकारी कैसे हो सकता है, अतएव भगवदायुधों की छाप लगाकर कर्मकाण्ड का अधिकार नहीं है यह कहना कोरा पागलपन है । वैष्णव भक्तों को उचित है कि पागलपन की बातों पर ध्यान न देकर सप्रेम भगवत्भजन करें ॥

एक बात का और भी ध्यान दीजिये । कि—

सूतके प्रेतकार्ये च तैलाभ्यंगे च भोजने । शयने तुलसीमालामधृत्वैव समाचरेत ॥

यह श्लोक वृहद्ब्रह्म सं० पा० ३ अ० ७ श्लोक ५२ है ॥ अर्थ सूतक में प्रेत-कार्य (मुर्दा जलाने) में देह में तेल लगाने समय में भोजन में शयन में तुलसी की माला धारण न करें । तात्पर्यार्थ--इस श्लोक में नित्य पहरने उतारने वाली माला की चर्चा है कि सूतक, प्रेतकर्म, तेल मालिश, भोजन शयन में माला धारण न करे । किन्तु पंचसंस्कारों के अवसर पर सद्गुरु से प्राप्त कण्ठी का निषेध नहीं है । शास्त्र प्रमाण है कि-सूतके नैवभवति स्पर्शदोषो न विद्यते ॥ ६४ ॥ और भी-वैष्णवस्य शरीरस्य न दाहः क्रियते यदि । न तेन दुर्गतिं गच्छेच्चक्रं तत्र प्रशास्ति हि ॥ ६६ ॥ (वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ५ ॥) अर्था जिसके शरीर में भगवत चक्र की छाप लग गई है उसे सूतक और अछूत स्पर्श दोष नहीं लगता है ॥ ६४ ॥ यदि वैष्णव के मृतक शरीर की दाह क्रिया न भी की जाय तो भी उसकी दुर्गति नहीं होती है । क्यों कि भगवदायुधों में श्रेष्ट चक्र की छाप लगी हुई है ।

नतेन दुर्गति गच्छेच्चक्रं तत्र प्रशस्ति हि । सर्प व्याघ्र विषा चौर वारि अग्नि विशूचिकाः चक्रांकितस्य नेच्छेन्ति दुर्गति यम किंकराः । श्मशाने मागधे देशे म्लेच्छदेशेऽन्त्यजां गणे ॥ ६७ ॥

(वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ५ ॥) यह निश्चय है कि जिसके शरीर में चक्रादिक भगवदायुधों की छाप लगी रहती है, वह प्रभु कृपा से अभय है । उसको बाघ, विष, चोर पानी में डूबने अग्नि में जलाने हैजा से मरने का डर नहीं होता है ॥ ६६ ॥ भगवदायुधों की छाप लगा हुआ मनुष्य चाहे श्मशान में मरे या मगध देश में मरे या अछूतों के झुण्ड में मरे तो भी यमदूत उसकी दुर्गति की इच्छा नहीं करते ॥ इसलिये भगवद्भक्तों को किसी परिस्थिति में कंठी का त्याग नहीं कराना चाहिये । क्यों कि स्कन्दपुराण वैष्णव खंड मार्गशीर्ष माहात्म्य अ० १० के श्लो० ४० में लिखा है कि—

अशौचं नैव विद्येत सूतके मृतकेऽपि च । येषां पादोदक मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते ॥ पृष्ट ५५८ ॥

अर्थात् जो व्यक्ति श्रद्धा भक्तिपूर्वक नित्य भगवत् चरणामृत को शिरोधार्य कर पान करता है उसको सूतक (सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर) और किसी के-

मर जाने पर भी अशौच नहीं लगता है। अर्थात अपवित्र नहीं होते हैं। उस समय भी--न त्यजेन्मम् कर्माणि सूतके मृतकेऽपि वा-अर्थात् उस अवस्था में भी भगवत्कर्मों का परित्याग नहीं करना चाहिये। मरना तथा जन्म लेना यह संसार का खेल है। अन्य देवी देवताओं का पूजन करना या कर्मकाण्ड भले ही निषेध है। किन्तु भगवान का पूजन या भजन करना कभी निषेध नहीं है। क्यों कि सभी अपवित्रताओं को पवित्र करने की सामर्थ तो भगवान् के नाम में ही है। मरतौ जासुनाम मुख आवा। अधमौ मुक्त होइ श्रुति गावा॥ अ० का० ३१ दो०) जिनके नाम की यह महिमा है कि-कि मरते समय में भी यदि जिसके मुख से नाम उच्चारण हो जाये तो वह मुक्त हो जाये यह वेद गाते हैं तब जो नित्य निरंतर प्रेमपूर्वक भगवन्नाम का जप एवं कीर्त्तन करता है, वह अपवित्र क्यों हो जायेगा। अथवा भगवान् क्यों अपवित्र हो जायेंगे। अस्तु भगवद्भक्त को भजन स्मरण तथा कंठी तिलक मुद्रादि का त्याग कभी भी नहीं करना चाहिये। प्रसवकाल में प्रसूता देवी (महिला) को बारहवाँ न होने तक पुस्तक माला, भगवान की मूर्ति इत्यादि तथा अन्य व्यक्तियों को स्पर्श करना निषेध है। किन्तु गले में बँधी हुई कंठी का त्याग करने या भगवान् के नाम का जपने का निषेध नहीं है। और पुरुष को तो पूर्ववत भजन पाठ करना चाहिये।

यदि कोई यह कहे कि सूतक में पाठ पूजन करना निषेध है तथापि भगवद्भक्तों को अपना नित्य नियम नहीं छोड़ना चाहिये। सूतक लगने में भोजन करना स्नान करना, सोना, तथा मलमूत्र त्याग करना इत्यादि अनेक अशुभ क्रियायें होती ही रहती हैं, जिनसे सूतक भी नहीं घटता और कुछ पुण्य भी नहीं बढ़ती। तब अपने नित्य नैमित्तिक कर्म क्यों छोड़े जायें, जिनसे सूतक का दोष भी नष्ट होने का शास्त्र प्रमाण है और भगवत्कृपा के भी साधन हैं. अस्तु सूतक या अशौच काल में भगवत्भजन स्मरण एवं पाठ पूजन बन्द न करके विशेष रूप में करना चाहिये। यदि भगवत्भजन स्मरण से सूतक तथा अशौच में लाभ नहीं होगा, तो शारीरिक सभी क्रियायें बन्द कर देना चाहिये। किन्तु यह बात किसी के वश की नहीं है। जब कि जागतिक सभी व्यवहार पूर्ववत होते रहते हैं तब भगवान् का भजन पूजन क्यों छोड़ा जाये॥ इसलिये सूतक या अशौचकाल में तथा कर्मकाण्ड करते समय किसी के कहने पर तुलसी की कण्ठी को त्याग नहीं किया जाये। महर्षियों के वचन हैं कि--तुलसी स्पर्शणेनैव सर्वपापं विनश्यति। तुलसी स्पर्शने नैव नश्यन्ति व्याधयो नृणाम्। (पद्मपुराण क्रियायोग सार खंड अ० २४ श्लोक २५ ग० वो० पृ० ६१) अर्थात् तुलसी जी

का स्मरण करते ही सब पाप नाश हो जाते हैं । और श्री तुलसी जी के छूने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं, निरोगी रहने की इच्छा वाले मनुष्य को तुलसी वृक्ष के निकट रहना चाहिये । अब सोचिये कि जिसके स्मरणमात्र से सभी पाप एवं दोष नष्ट हो जाते हैं, उसका किसी भी परिस्थिति में त्याग क्यों किया जाये । पुनः त्यागने का निषेध भी किया गया है । यथा--

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कंठलग्ना द्विधाकृती । दद्यातां क्षणमात्रोऽपि शिष्यो नैव त्यजेत्पुनः ॥ (सनत्कुमार संहिता अ० ६ श्लोक १५(दीक्षापद्धति पृ० ६८) वैष्णवैः सततंधाया श्री तुलसी द्वियष्टिका । तां त्यजन्पुरुषो मूढ़ो भ्रष्ट संस्कार एव हि ॥

(वाल्मीकि संहिता अ० ६ श्लोक ६८ ॥) अर्थ--पतले दाने की तुलसी की माला जो सर्वदा कण्ठ में लगी रहे, दोलर युक्त गुरु शिष्य को धारण करावे । सद्गुरु से प्राप्त करके उस माला (कंठी) को फिर शिष्य कभी एक क्षणमात्र के लिये भी त्याग न करे ॥ यदि त्याग करता है, तो वह मूढ़ात्मा निश्चय ही संस्कार भ्रष्ट है । सत्पुरुषों को उससे व्यवहार नहीं करना चाहिये । उसे त्याग दे । इसलिये वैष्णव को दोलर युक्त तुलसी की कंठी सर्वदा पहिरना चाहिये ॥ मुर्दा जलाते समय मुर्दा जलाने वाले व्यक्ति को तो कंठी उतारने की कौन कहे, मुर्दा की दाह क्रिया में भी तुलसी काष्ट संयुक्त दाह संस्कार करने की अपार महिमा है । यथा--

तुलसी दारुणदाहो न तस्य पुनरावृत्तिः । यदेकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठ शतस्य हि ॥ ५ ॥ दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटि पाप युतस्य च । गङ्गाम्भसाभिषेकेण यान्ति पुण्यानि पुण्यताम् ॥ ६ ॥ तुलसी काष्ठ मिश्राणि यान्ति दारुणि पुण्यताम् । तुलसीकाष्ठ संमिश्रा यावत्प्रज्वलते चिता ॥ ७ ॥ दह्यन्ति तस्य पापानि कल्पकोटि कृतानि वै । दह्यमानं नर दृष्ट्वा तुलसी काष्ठ वह्निना ॥८॥ नयन्ति तं विष्णुदूता न च वै यम किङ्करा । जन्मकोटि सहस्रैस्तु मुक्तोयाति जनार्दनम् ॥ ६ ॥

पद्मपुराण उत्तर खंड अ० २५ वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित । गतिबोध पृ० ८४ से ॥

अर्थ -यदि सौ लकड़ियों में एक भी तुलसीजी लकड़ी की है । ऐसे तुलसीयुक्त काष्ट

से दाह संस्कार होने पर मृतकात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता है ॥ ५ ॥ दाह क्रिया के ही समय में अनेक पापों से मुक्त हो जाता है। और गंगाजल से स्नान व अभिषेक की पुण्य प्राप्त होती है ॥ ६ ॥ तुलसी काष्ठ मिश्रित काष्ठ से दाह क्रिया करने पर पुण्य बढ़ती है। और तुलसी काष्ठ मिश्रित लकड़ी की चिता जब तक जलती रहती है ॥ ७ ॥ तब तक उस मृतात्मा के किये हुये करोड़ों कल्पों के पाप जलते रहते हैं। और देखने वाले व्यक्ति के भी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥ उसको जमदूत स्पर्श भी नहीं करते। अनेकानेक जन्मों के पापों से मुक्त होकर भगवत्पार्षदों के साथ भगवान् के धाम जाता है ॥ ६ ॥ और इसी अध्याय के ३७ तथा ३८ श्लो० में लिखा है कि--

विनायस्तुलसीं कुर्यात्सन्ध्या कालेतु मार्जनम् ॥ ३७ ॥ तत्सर्वं राक्षसं हृतं नरकं च प्रयच्छति ॥ ३८ ॥

गतिबोध पृ० ८४ ॥ अर्थात् सन्ध्याकाल में व्यक्ति बिना तुलसी के मार्जन करता है ॥ ३७ ॥ उस सब क्रिया कलाप को राक्षस अपहरण कर लेते हैं, वह नरक में जाता है ॥ ३८ ॥ इतनी महान महिमा वाली तुलसी जी की कंठी का किसी अवस्था में भी त्याग नहीं करना चाहिये ॥

जिन देवियों ने वैष्णवीय दीक्षा संस्कार प्राप्त नहीं किया, वह अपनी रुचि से जैसे चाहें वैसे रहें। किन्तु जिन माताओं बहिनों ने सद्गुरु से वैष्णवीय पंच संस्कार प्राप्त किया है, उन्हें प्रसूतिगृह में, अर्थात् सन्तान जन्म के समय भी और सन्तान होने के बाद भी कंठो का त्याग नहीं करना चाहिये। सन्तान पैदा होने में माता का शरीर अपवित्र होता है, किन्तु कंठो तो अपवित्रता को शुद्ध करने वाली है, तब तुलसी की कंठीं का त्याग क्यों किया जाये। यदि किसी माता की प्रसवकाल में ही मृत्यु हो जाये तब यदि वह तुलसी की कंठी पहिरे है तो शास्त्र प्रमाणानुसार भगवत्कृपा की अधिकारिणी होगी। और कंठी खोलकर रख देने में तुलसी का त्याग का दोष लगेगा। यहां तक कि-पति की परलोक यात्रा के पश्चात् सती होते समय भी तुलसी माला का त्याग करना उचित नहीं है ॥ स्कन्दपुराण में लिखा गया है कि-

यज्ञोपवीत वद्धार्या कंठे तुलसमालिका। नाऽशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ॥

अर्थात् यज्ञोपवी (जनेऊ) की भाँति श्री तुलसी जी की माला (कंठी) सर्वदा धारण करे। किसी भी समय त्याग न करे। क्यों कि तुलसी की माला (कंठी)

पहिरने वालों को अशौच का दोष नहीं लगता। वह (तुलसी जी) ब्रह्मरूपिणी हैं ॥ दीक्षापद्धति पृ० ७० ॥ और भी लिखा है कि—

यज्ञसूत्रं विना विप्राः वेद हीना क्रिया यथा । सत्यहीनं यथा वाक्यं माला हीना च वैष्णवाः ॥

दी० प० पृ० ७० ॥ सोचने विचारने योग्य यह बात है कि द्विजातिमात्र (ब्राह्मण क्षत्री वैश्य) यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहिर कर प्रेतकार्य, तेल मालिश, शयन, भोजन तथा मलमूत्र का त्याग एवं मैथुन क्रिया करते रहते हैं । क्या इन क्रियाओं में तथा सूतक में यज्ञोपवीत उतार कर रख दिया जाता है । यदि यज्ञोपवीत अशुद्ध नहीं हो जाता है तब महान अशुद्धता को परम शुद्ध करने वाली तुलसी माला (कंठी) को उतार कर रखने की आवश्यकता नहीं है । कुछ महानुभावों का कहना है कि—तुलसी पहिन कर स्नान करने में दोष लगता है तुलसी का स्पर्श किया जल गंगाजल सदृश्य पवित्र होता है । अस्तु पैर में नहीं लगना चाहिये । वे सज्जन ध्यान दें ॥

यदि तुलसी से स्पर्शित जल गंगाजल सदृश्य होने के कारण पैर पर पड़ने में दोष लगता है । तब तो फिर गंगा जी में प्रवेश करने पर या स्नान करने पर महान दोष लगना चाहिये । क्यों कि गंगस्नान करने में तो गंगाजल सर्वांग में स्पर्श करता है । इसलिये ये कहना कि तुलसी से स्पर्श किया जल पैर में लगने से दोष होता है, उपयुक्त नहीं है ॥ दूसरी बात यह है कि-तुलसी से स्पर्शित जल से स्नान करना निषेध भी नहीं है । अपितु विधि लिखी गई है ॥ कि--

कोटि ब्रह्माण्ड मध्येषु यामि तीर्थानि भूतले । तुलसीदलमाश्रित्यतान्येव निवसन्ति वै ॥ (पद्मपुराण क्रियायोगसार

खंड अ० २४ श्लोक १० श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित । गतिबोध पृ० ८७ ॥) अर्थ—अनेक ब्रह्माण्डों में पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं । वे सब तीर्थ तुलसीदल के आश्रित निवास करते हैं ॥ और लिखा है कि—

तुलसीपत्र गलितं यस्तोयं शिरसा वहेत् । सर्वतीर्थेषु स स्नातश्चांते याति हरेगृहम् ॥

(पद्मपुराण ब्रह्म खंड अ० २२ श्लो० २७ श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित और गतिबोध पृ० ७१) अर्थ--तुलसीदल पड़े हुये जल से जो स्नान करता है । उसको सब तीर्थों में स्नान करने का फल होता है । और अन्त में (मरने के बाद)

भगवद्धाम जाता है। तब भी यह कहना कि तुलसी स्पर्श किया हुआ जल पैरों पर पड़ने से दोष होता है। केवल हठ वाद ही है ॥ जगतगुरु श्री रामानुजाचार्य सम्प्रदाय के महाविभूति स्वरूप श्री त्रिदण्डी स्वामी जी ने वार्ता माला के पृ० ५ में—

कंठे माला धरोयस्तु मुखेराम सदोच्चरेत्। गान कुर्या सदा भक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः ॥

और पृ० ७ में—ये कण्ठ लगना तुलसी नलिनाक्षिमाला। इत्यादि कई प्रमाणिक श्लोकों को प्रकाशित करके यह प्रमाणित किया कि श्री वैष्णवों को कंठ लग्ना तुलसी की माला सर्वदा पहिरना चाहिये ॥ अस्तु भगवत् शरणागत वैष्णव भक्तों को किसी भी परिस्थित में एक क्षण के लिये भी तुलसी की कंठी का त्याग नहीं करना चाहिये। नाम संस्कार—

आब्रह्म लोकाल्लोकानां यदैश्वर्यं नतद्ध्रुवम्। अथ नित्यं महत्साधु यद्दास्यं परमात्मनः ॥

(भरद्वाज सं० परिशिष्ट अ० १ श्लो० ६८) अर्थ—ब्रह्मलोक से आदि लेकर जितने भी लोक हैं। उन सबका सुख नाशवान है। इसलिये श्रेष्ठ सन्तजन उस अखण्ड अविनासी परमात्मा के दास हो जाते हैं ॥ पुनः—सोऽहं दासो भगवतो मम स्वामी जनार्दनः। एवं वृतिर्भवेदस्मिन्स धर्म परमोमतः ॥ १६ ॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ८ ॥ अर्थ—जिसकी यह वृत्ति है कि मैं भगवान् का दास हूँ। वे ही मेरे स्वामी हैं, बस, इसी को परमधर्म कहते हैं ॥ अनन्य शेषरूपा वै जीवास्तस्य जगत्पते। दास्यं स्वरूपंसर्वेषमात्मानां सततं हरेः॥ ८१ ॥ भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते : स एव हि महापापी चाण्डालाः स्यान्न संशयः ॥ ८२ ॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ६ ॥ अर्थ—संसार में जितने भी जीव हैं, वह जगत्पति श्री हरि के अनन्य शेष रूप (अर्थात् सभी जीव ब्रह्म के अंश) होने से सभी जीवात्मायें भगवान् के दास हैं। ८१ ॥ भगवान् का अंश होने पर भी जो यह कहता है कि मैं अन्य की शरण हूँ, उसे निश्चय ही महापापी और चाण्डाल जानो ॥ गतिबोध पृ० ८७ से लगातार पृ ११३ तक अवश्य द्रष्टव्य है ॥

भगवत्परिचर्यैव जीवानां फलमुच्यते। तद्विना किं शरीरेण यातनाऽस्य तु ॥ ११२ ॥ यस्मिन्शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः। तदेव निरयं प्रोक्तं सर्व दुःख फलं भवेत् ॥ ११३ ॥ ब्रह्माद्याः सकलादेवा वशिष्ठाद्या महर्षयः। कांक्षन्तं परमंदास्यं विष्णोरेव यजन्तित ॥ ११५ ॥ तस्माच्चतुर्थ्या मन्त्रस्य

प्रधानं दास्यमुच्यते । न दास्ययुक्तिर्जीवानां नाशहेतुः परस्य हि ॥ ११६ ॥

वृद्धहारीतस्मृति अ० ६ ॥ अर्थ—भगवान श्री हरि के अर्चा विग्रह की सेवा टहल जीवों के लिये उत्तम फल कहा जाता है । मनुष्यों का शरीर भगवत्कैंकर्य के बिना यातना (दुख रूप) ही है यह निश्चय जानो ॥ ११२ ॥ जीवों ने मनुष्य शरीर पाकर भी यदि भगवान् श्री हरि का दासत्व स्वीकार नहीं किया । तो वह निश्चय ही नरक का भोक्ता होगा । और परमात्मा की दास्यता से रहित महान दुःख पावेगा ॥ ११३ ॥ ब्रह्मादिकों से लेकर जितने देवता और वशिष्ठादि जितने महर्षि हैं, वे सब भगवान् श्री हरि के दास होने को प्रबल इच्छा और नित्य पूजन करते हैं ॥ ११४ ॥ इसीलिये श्री राम मन्त्र श्री गोपाल मन्त्र श्रीमन्नारायण मन्त्र में चतुर्थी (ताय) विभक्ति लगी हुई है, वह प्रधानतया भगवद्दास्यता का ही प्रबोध कराती है । जिन जीवों के मन में भगवान् के प्रति दासभाव की वृत्ति नहीं है, उसके परलोक नाश का प्रधान यही कारण है । अर्थात् भगवद्दास्यता के बिना संसार से मुक्ति एवं भगवद्धाम को प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥ दासत्वमपि दुर्लभम् ॥ अगस्त सं० अ० ३ श्लो० ३१ ॥ श्री राम जी का दास होना दुर्लभ है ॥

रामादि दासान्तमथो समुच्चरेत् ॥ ६२ श्री वैष्णवमताब्जभास्करः ॥ श्रीराम आदि और दास को अन्त में लगाने से रामदास हो जाता है । अस्तु गुरु अपने शिष्य का नाम श्री रामदास श्री जानकी दास श्री कृष्ण दास श्री नारायण दास श्री श्री नरसिंह दास इत्यादि भगवान् के नामों के अन्त में दास शब्द जोड़ कर रखें ॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ३ श्लो० ४ में कहा गया है कि--नृसिंहराम कृष्णाख्यं दास नाम प्रकल्पयेत ॥ और भी-- नाम वैष्णव हेतुत्वं मुख्यमित्येतदुच्यते । योजयेन्नाम दासन्तं भगवन्नाम पूर्वकम् ॥ पाराशरीय धर्मशास्त्र उत्तर खंड अ० २ श्लोक ४६ ॥ अर्थ--गुरु शिष्य के नाम को श्री वैष्णव अर्थात् भगवान् का नाम प्रथम और दास शब्द उसके बाद लगाकर धरे । यथा--रघुवीर दास राघव दास इत्यादि ॥ पुनः-- महापुरुष विद्यां च दासोऽहं मिति भावयेत् । दासोऽहं स्वामि सेवार्थं देहयात्रा विधानतः ॥ ४१ ॥ प्रवर्त्तयिष्ये सततं प्रीणातु पुरुषोत्तमः ॥ ४२ ॥ वृ० ह० १० ३ अ० ७ श्लो० ४१-४२ ॥ अर्थ--मैं महापुरुष का दास हूँ ऐसी भावना करे ॥ महापुरुष शब्द का संकेत परात्पर पुरुष के लिये है । यथा--

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं, तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम् । भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धि पोतं, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ श्रीमद्भागवतएकादश स्कन्ध अ० ५ श्लोक ३३॥ पुनः— यस्यामलं नृपसदस्सु

यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिग्गिभेन्द्रपट्टम् । तं नाकपालवसुपाल किरीट जुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणंप्रपद्ये ॥ ६-११-२१ और भी-त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मीं. धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् । मायामृगं दयित-येप्सित मन्वधावद् वन्दे महापुरुते चरणारविन्दम् ॥ ११ ५।३३ ॥

अर्थ—सबके मनोरथों को पूर्ण करने वाले, शरणागतों को पालन करने वाले, संसार सागर से पार उतारने के लिये जिनके श्री चरण कमल जहाजस्वरूप समस्त तीर्थों के मूलभूत, सभी को शरण देने वाले, परम शरण्य, सभी के पराभाव को नष्ट करके उत्कृष्टता प्रदान करने वाले, परात्पर ध्यान करने योग्य, शिव और ब्रह्मा जी से सर्वदा नमस्कृत, सेवा करने के भाव से मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ ॥११।५।३३॥ समस्त पापों का नाश करने वाले जिनके निर्मल यश को ऋषी लोग आज भी राजाओं की सभा में गायन किया करते हैं । चारों दिग्जों के शिर पर विराजने वाली संपूर्ण पृथ्वी के एकमात्र शासक हे रघुपते ! स्वर्ग निवासी इन्द्रादिक लोकपालों और समस्त भूमण्डल के भूपालों के शिर के मुकुटों से वन्दित श्री चरण कमलों की शरण में मैं प्राप्त हूँ ॥ ६।११।२१ ॥ परम धर्म निष्ठ पूज्य पिता श्रीदशरथ जी के बचन को पूर्ण करने के लिये देवताओं से भी अभिलषित दुस्त्यज (किसी भी प्रकार न त्यागे योग्य) श्री अवध की राज्य श्री को त्रवत् त्याग कर घोर वन में चले गये । वहाँ अपनी अभिन्न प्रियतमा श्री जानकी जी की इच्छापूर्ति के लिये मायामृग अर्थात् कपट रूप से मृग बने हुये मारीच के पीछे दौड़ने वाले महापुरुष श्रीराम जी के श्री चरणों की मैं वन्दना करता हूँ ॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि, प्रगट परावर नाथ । रघुकुलमणि ममस्वामि सोइ, कहि शिव नाये उ माथ ॥ रा० च० मा० बा० कं० ११६ दो० ॥ पुरुष प्रसिद्ध अर्थात् आदि पुरुष जिनको सभी जानते हैं । और अपना सेव्य आराध्य इष्टदेव मानकर उपासना करते हैं । प्रकाशनिधि-सूर्य. चन्द्र, नक्षत्र अग्नि इत्यादि जिनके प्रकाश से प्रकाशित हैं । जो प्रत्यक्ष में परावर अर्थात् त्रिपाद विभूति में स्थित सच्चिदानन्दमय नित्य धाम और लीलामय यह एकपाद् विभूति इन दोनों के स्वतन्त्र शासक हैं । वही प्रभु रघुकुल में मणि सदृश्य प्रकाशमान भगवान् श्री राम जी मेरे स्वामी हैं । ऐसा कहकर श्री शिव जी ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ॥ सबकर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥ अस्तु महापुरुष शब्द श्री राम जी में ही ऋषियों ने बहुमात्रा में प्रयोग किया है ॥ ४१ ॥ इस देह से मैं अपने स्वामी का दास हूँ । सर्वदा ऐसी भावना

करता हुआ पुरुषोत्तम (भगवान श्रीराम) को प्रणाम करे ॥ ४२ ॥ और भी देखिये, श्री अवधवासियों का सिद्धान्त—

जेहि जेहि जोनि कर्मवश भ्रमहीं । तहँ तहँ ईश देउ यह हमहीं ॥ सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नात येहि ओर निबाहू ॥ अयो० कां० २४ दो० ॥ इन पंक्तियों में श्री अवधवासी भगवान् से यही मनाते हैं कि—श्री सीतानाथ हमारे स्वामी और हम जन्म जन्मान्तरों तक प्रभु के सेवक बने रहें । भले ही कर्म विवश होकर हमारा अनेक जोनियों में जन्म हो । तथापि श्री जानकी जीवन श्री राम जी से हमारा स्वामी सेवक के नाता का निर्वाह होता रहे ॥ और अध्यात्म रामायण किष्किन्धाकांड सर्ग ३ श्लोक ४५ में सुग्रीवजी कहते हैं कि-दासोऽहं ते पादुपद्मं सेवे लक्ष्मण वच्चिरम् ॥ अर्थ—मैं आपका दास हूँ । लक्ष्मण जी के समान मैं सर्वदा आपके श्रीचरण कमलों की सेवा करता रहूँगा ॥ पुनः-पद्मपुराण उ० खं० अ० २५४ के श्लो० ३६ तथा ४७ में लिखा है कि—परस्य दासभूतस्य स्वातन्त्र्यं न हि विद्यते ॥ ३६ ॥ परमात्मा हरिर्दासः स्यामहं तस्य सर्वदा ॥ ४७ ॥ अर्थ— मैं परमात्मा का दास भूत हूँ, और मैं किसी प्रकार स्वतन्त्र नहीं हूँ । ३६ । मैं सर्वदा परमात्मा अर्थात् श्री हरि का दास हूँ ॥ ४७ ॥

यस्य दास्यैक निरता ब्रह्म रुद्रादयोऽमराः । तस्य दास्यं परित्यज्य किं वृथा जीवितेन मे ॥ वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ३ श्लोक २१ ॥ अर्थ—जिन भगवान् का दास ब्रह्मा शिव इन्द्रादिक देवता भी अपने को मानते हैं । उन भगवान् श्री हरि के दासपने को छोड़कर अन्य शरीरों की दासता करता रहा, इसलिये मेरा जीवन व्यर्थ हो गया ॥ फिर वृ० ब्र० सं० पा० ३ अ० ८ के श्लोक ४८ को देखिये--विनादास्यं हरेश्चान्यत्सर्वं निरय संनिभम् । संसारो निरयः प्रोक्तो यत्र नाऽऽचार्य सेवनम् ॥ अर्थ-विनाभगवद्दास हुये और सब नरक है जिसने गुरु सेवा नहीं की उसको यह संसार नरक जानो ॥ नोट- यह सर्वदा ध्यान रखना चाहिये कि- सन्त या साधु अनन्य भगवद्भक्तों को ही कहते हैं. अनेक देवी देवताओं या वर्णाश्रम के दासों को सन्त या साधु समझना भूल है । जो अनन्यता पूर्वक अपने को भगवान् श्री हरि का दास मानता है वास्तव में साधु या सन्त उसी को मानना उचित है उसी के दर्शन स्पर्श सत्संग से विशेष लाभ होता है । यथा--

यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम । पाप संघं स्पर्शनाच्च किम हो साधु संगमः ॥ २० ॥ साधूनां हृदयं धर्मो वाचो देवाः सनातनः । कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ॥ २१ ॥ मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य

जगवये। यथावतारे कृष्णस्य गतो दुष्टविनिग्रहे ॥ २२ ॥

(कालिका पुराण अंश ३ अ० १६ ॥) अर्थ--जिनकी पूजा करने से भगवान् श्री हरि पूजित होते हैं जिनका दर्शन करने से फिर जन्म नहीं होता, और जिनके दर्शन से पाप पुञ्ज का क्षय होता है, ऐसे साधुओं का समागम क्या ही उद्भुत है ॥ २० ॥ साधुओं का हृदय ही धर्म है, साधुओं का वाक्य ही सनातन देवता है, साधुओं के कर्म ही कर्मक्षय होने के कारण हैं, अस्तु साधु स्वयं हरि का स्वरूप हैं ॥ २१ ॥ जिस प्रकार दुष्टों को दण्ड देने के लिये ही श्री कृष्णावतार में श्रीकृष्ण जी का शरीर नित्य है, अर्थात् अमायिक दिव्य है। उसी प्रकार इस त्रिलोकी में वैष्णव शरीर भी भौतिक पंचतत्वात्मक नहीं कहा जाता ॥ २२ ॥

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं नवै विदुर्ऋषयोनापि देवाः न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥ १६ ॥ स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः। प्रह्लादो जनको भीष्मो वलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशै विजानी मोधर्मं भागवतं भटाः। गुह्यं विशुद्धं दुर्वोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥२१॥

(श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० ३ ॥) अर्थ--साक्षात् भगवान् श्री हरि के कहे हुये इस वैष्णव धर्म के विषय में ऋषि देवता और प्रधान-प्रधान सिद्धगण भी कुछ नहीं जानते। तो फिर इस विशिष्ट धर्म के विषय में असुर मनुष्य और विद्याधर चारणादि तो जान ही कैसे सकते हैं ॥ १६ ॥ यमराज कहते हैं कि-हे दूतगण श्री ब्रह्मा जी, नारद जी, श्री शिव जी, सनत्कुमार जी, कपिलदेव जी, स्वयंभुव मनु श्री प्रह्लाद जी श्री जनक जी भीष्मपितामह जी, वलि, शुकदेव जी और हम ॥ २०॥ यह बारह उस परम गुह्य पवित्र और दुर्वोध (समझने में अत्यन्त कठिन) भागवत् धर्म (श्री वैष्णव धर्म) के विषय में कुछ जानते हैं। जिसके जान लेने से मनुष्य अमरपद (मोक्ष प्राप्त कर लेता हैं ॥ २१ ॥ मनुष्यों के मुख्य परम धर्म यथा—

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसांधर्मः परः स्मृतः। भक्तियोगोभगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥

श्रीमद्भागवत स्कंध ६ अ० ३ ॥) अर्थ--इस लोक में भगवान् श्री हरि के नामोच्चारणादि के सहित किया हुआ भक्ति योग ही मनुष्यों का सब धर्मों से प्रधान धर्म माना गया है ॥ और भगवद्भक्ति हीन ज्ञानियों की निन्दा की गई है, यथा-

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्ताम्। स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनु वाङ्मनोभिः, ये प्रयासोऽजित जितोऽप्यसि

तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्यते विभो, क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये । तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते, नान्यद्यथा स्थूल तुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥

श्री भद्भागवत स्कंध १० अ० १४ ॥ गतिबोध पृ० ९६ से १०० तक ॥

अर्थ—हे नाथ ! जो लोग ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रयास करना छोड़कर अपने स्थान पर ही रहते हुये, सत्पुरुषों के मुख से निकली हुई आपकी कथा वार्ता को सुन कर मन वाणी और शरीर से उनका सत्कार करते हुये जीवन यात्रा करते हैं, हे अजित ! त्रिलोकी में वे आपको जीत लेते हैं ॥ ३ ॥ हे विभो ! और जो लोग कल्याण प्राप्ति की मार्ग रूपा आपकी भक्ति को छोड़ कर केवल ज्ञान लाभ के लिये ही क्लेश उठाते हैं, उनके लिये केवल कष्ट ही शेष रहता है, और कुछ नहीं मिलता । जैसे चावल निकल जाने के बाद केवल भूसी कूटने वाले को श्रम के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं लगता ॥ ४ ॥ पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी कहा कि— जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥ ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहि पयलागी ॥ सुनु खगेश हरि भगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥ ते शठ महासिन्धु विन तरनी । पैरिपार चाहैं जड़ करनी ॥ रा० च० मा० उ० कां० ११५ दो० ॥ इन पंक्तियों के पूर्व श्री भुसुण्डीजी ने भक्ति की अपार महिमा बताकर कहा कि—भक्ति महारानी की ऐसी अपार महिमा को भी जानकर जो व्यक्ति श्री हरि भक्ति को छोड़ कर केवल ज्ञान के लिये ही श्रम करता है, वह जड़ हैं, क्यों कि कामधेनु रूपी श्री हरिभक्ति को घर में छोड़कर दूध प्राप्ति के लिये अन्य देवी देवताओं की आराधना या अहं ब्रह्मास्मि के भ्रमवात में पड़ता है ॥ पुनः कहा कि हे पक्षिराज ! श्री हरि भक्ति को छोड़ कर जो मनुष्य अन्य उपायों से अर्थात् कर्म काण्ड, षटकर्म योग, देवाराधना या अहं ब्रह्मास्मि के द्वारा सुख चाहते हैं, तो वे शठ हैं, क्यों कि संसार रूपी अपार समुद्र में जहाज या नौका के ही विना पैर कर पार होना चाहते हैं, अर्थात् सुदृढ़ नौका या जहाज सदृश्य भगवान् श्री हरि के चरणों का आश्रयण न करके अनेक साधनरूपी अपने पुरुषार्थ से मुक्त होना चाहते हैं ॥ वा० कां० की वन्दना में बताया गया है कि—"यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम् ॥" अर्थात् जिन श्री राम जी के श्री चरणकमल ही संसार सागर के पार होने के लिये एकमात्र जहाज सदृश्य हैं । अस्तु श्री हरि भक्ति विना किये अन्य किसी भी ऊपाय से मुक्त होना असंभ है । उ० कां० वेदस्तुति

में वेदों ने कहा कि—जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी । ते पाय सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥ अर्थात् जो ज्ञान के अभिमान में मतवाले होकर संसार चक्र से छुड़ाने वाली आपकी भक्ति का आदर नहीं करते हैं । वे साधनों के द्वारा देव दुर्लभ पद (कैवल्य मोक्ष) प्राप्त करके भी निश्चय रूप से पतन हो जाते हैं । हे हरी हम देखते रहते हैं । उसका प्रधान कारण यह है कि—जिमि थल विन जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोइ करै उपाई ॥ तथा मोक्ष सुख सुनु खग-राई । रहि न सकै हरि भगत विहाई ॥ अस विचारि हरिभगत सयाने । मुक्ति निरा-दर भक्ति लुभाने ॥ उ० कां० ११६ दो० ॥ पुनः इसी दोहे में कहा गया है कि—

भजन करत विन जतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नासा ॥ भजन करने पर विना जतन या प्रयास किये ही जन्म मरन की जड़ अविद्या ही नाश हो जातीहै तव संसार चक्र अनायास सहज ही में मिट जाता है । उसका प्रकार वतलाते हैं कि—भोजन करिय तृप्ति हित लागी । जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥ भोजन तो छुधा तृप्ति (भूख मिटाने) के लिये किया जाता है । परन्तु पेट में जाने पर वहीं जठ-राग्नि उसे पचा देती है । भोजन पाने वालों को पचाने का उपाय अलग से नहीं करना पड़ता । ठीक उसी प्रकार भगवद्भजन करने पर संसार चक्र स्वयमेव (अपने आप ही) छूट जाता है । तव यदि कोई यह कहे कि—"ऋतेंज्ञानान्मुक्तिः" इस श्रुति वाक्य की क्या दशा होगी । उसका समाधान यह है कि—जिस ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होना कहा गया है, वह भगवद्विषयिक ज्ञान है । शुष्क ज्ञान की चर्चा नहीं है ॥ पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—श्रुति पुरान सव ग्रन्थ कहाहीं । रघुपति भगति विना सुख नाहीं ॥ अन्धकार वरु रविहिं नशावै । राम विमुख न जीव सुख पावै ॥ हिम ते अनल प्रगट वरु होई । विमुख राम सुख लहै न कोई ॥ वारि मथे घृत होइ वरु, सिकता ते वरु तेल । विन हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥ मसकहिं करइ विरंचि प्रभु, अजहिं मशक ते हीन । अस विचारि तजि संशय रामहिं भजहिं प्रवीन ॥

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे । हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥

रा० च० मा० उ० कां० १२२ दो० ॥ अर्थ—मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ, यह निश्चय है कि जो मनुष्य भगवान् श्री हरि का भजन करता है, वह अत्यन्त दुस्तर संसार सागर से पार हो जाता है । मेरे यह वचन झूठ नहीं हो सकते हैं ॥

दासोऽस्मीति च संध्याय चाऽस्मानं परमेश्वरि ! अभयं तस्य दास्यामि योमामेति निरन्तरम् ॥ १५ ॥ दासोऽस्मीति निजं रूपं स्मरन्मुच्येत बन्धनात् ॥ १६ ॥

वृ० ब्र० सं० पा० २ अ० ३ ॥ अर्थ—श्रीमन्नारायण कहते हैं कि हे लक्ष्मी जी ! जो जीव आत्मा में अनुसन्धान करके कहता है कि आपका दास हूँ । तो मैं उसे अभयता प्रदान कर देता हूँ । अर्थात् सर्वदा के लिये अपनी सेवा में रख लेता हूँ ॥ १५ ॥ जो कोई अपने स्वरूप को भगवान् का दास (शेष भूत) मान कर अपने को प्रभु का दास कहता है, तो वह भवबन्धन से अर्थात् जन्म मरन से मुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥ पुनः—न कर्म बन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते । न दास्यं परमेशस्य बन्धनं परिकीर्तितम् ॥ ८७ ॥ सर्व बन्धभिनिर्मुक्ता हरिदासा निरामयाः ८८ ॥ वृ० ब्र० सं० पा० ३ अ० २ ॥ अर्थ—श्री वैष्णवों का कर्म बन्धन और जन्म नहीं होता, और ऐसा कहा जाता है कि—भगवान् के दास संसार के बन्धन में नहीं आते ॥८७॥ भगवद्दास सब पापों से छट जाते हैं । इसीलिये संसारी सभी बन्धनों से मुक्त (छटे हुये) रहते हैं ॥ ८८ ॥

[प्राप्यते वैष्णवो लोको विना दास्येन कुत्रचित् ॥ ११७ ॥

वृ० ब्र० सं० पा० ३ अ० २ ॥ भगवान् श्री हरि की दासता विना स्वीकार किये किसी भी साधन से भगवद्धाम नहीं जा सकता ॥ ॥ ११० ॥ और भी देखिये कि—त्वद्दास दास दासत्वं दासस्य देहि में प्रभो । ११३ ॥ पद्म पु० ब्रह्म खं० अ० २२ वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित, अर्थ—हे प्रभो ! आप अपने दास के दास के दास का दासत्व मुझे दीजिये । पुनः—दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य ॥ ३४ ॥ श्रीमद्वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड सर्ग ४२ ॥

उपपातकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च । तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवानां च दर्शनम् ॥ १८ ॥ हिंसादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञान कृतं च तत् । तत्सर्वं नाशमायाति दर्शनाद्वैष्णवस्य च ॥ २१ ॥ संसार कर्दमालेप प्रक्षालन विशारदः । पावनाः पावनानां च विष्णुभक्तो न संशयः ॥ २३ ॥

पद्म पु० उ० खं० अ० ११० श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित । अर्थ—किसी भी प्रकार के किये हुये उपपातक और महापातक भी श्री वैष्णवों के दर्शन से सब नाश हो जाते हैं ॥ १८ ॥ ज्ञान वा अज्ञान से किये हुये जो हिंसादि पाप हैं, वह सब श्री वैष्णव के दर्शन से नष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥ संसाराशक्त काम क्रोध मोह लोभ ममता मद मात्सर्य रूपी कीचड़ में फसे हुये जीवों को प्रक्षालन (पवित्र)

करने में भगवद्भक्त परम कुशल होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥ पुनः--बताया गया है कि--

बाहुभ्यां सागरं तर्तुं यद्वन्मूर्खोऽभिवाञ्छति। संसारसागरं तद्विष्णुभक्तिं विना नरः ॥ ३० ॥ चक्षुर्विना यथा दीपं दृष्ट्वादर्पणमेव च। समीपस्था न पश्यन्ति यथा विष्णु बहिर्मुखः ॥ ५५ ॥ त्यक्त्वा वैकुण्ठनाथं तमन्यमार्गे कथं रमेत। भक्ति हीनैश्चतुर्वेदैः पठितैः किं प्रयोजनम् ॥ ९८ ॥ श्वपचो भक्तियुक्तस्त्रिदशैरपि पूज्यते। स्वकरेकंकण बद्धा दर्पणैः किं प्रयोजनम् ॥ ९९ ॥

पद्म पु० उ० खं० १३१ श्री वैकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित ॥ अर्थ-जिस प्रकार मूर्ख व्यक्ति अपने भुजाओं के बल से तैर कर पार करने की इच्छा से समुद्र में कूदता है, परिणामतः वह डूब जाता है। उसी प्रकार भगवद्भक्ति के बिना मनुष्य अन्य किसी साधन के द्वारा संसार सागर पार नहीं हो पाता ॥ ३० ॥ नेत्र हीन व्यक्ति को दीपक जलने पर भी अपने निकट का भी कुछ पदार्थ दिखाई नहीं देता, और साफ (स्वच्छ) शीशा में भी मुख नहीं दीखता, उसी प्रकार भगवद्भक्ति से विमुख जीवात्मा का कल्याण नहीं हो पाता है ॥ ५५ ॥ वैकुण्ठनाथ भगवान् श्री हरि को त्याग कर अन्य मार्गों में--अर्थात् और साधनों को करने से भगवद्भक्ति रहित चारों वेदों के ज्ञाता और चारों वेदों के पाठ कर्ता को भी कुछ लाभ नहीं। अर्थात् भक्ति रहित चतुर्वेदाचार्य भी भगवान् का प्रिय नहीं हो पाता है ॥९८॥ और भगवद्भक्ति युक्त श्वपच भक्त भी सर्वत्र पूज्यनीय होता है। जिस प्रकार हाथ में बँधे हुये कंकण में देखने से शीशा की आवश्यकता नहीं होती ॥ गति बोध पृ० १०१ ॥

नवेद यज्ञाध्ययनैर्न व्रतैश्चोपवासकैः। प्राप्यते वैष्णवं लोके विना दास्येन कुत्रचित् ॥ १ ॥ तस्माद्दास्यं हरेर्भक्त्या भजेतानन्य मानसः प्राप्नोति परमां सिद्धिं कर्मबन्ध विमोचनीम् ॥ २ ॥ बृहद् वैष्णव पद्धति पत्रा ॥ २५ ॥

अर्थ--न वेद से, न यज्ञ से, न अध्यन से, न व्रत से और न उपवास से श्री वैष्णव लोक प्राप्त होगा। जब कभी होगा तब श्री रामदास (भगवद्दास) बनने से होगा ॥ १ ॥ इसलिये मन से अनन्यता पूर्वक भगवान् श्री हरि के दास बन कर भगवद्भक्ति करने से ही कर्म बन्धनों से छुड़ाने वाली परम सिद्धि (मुक्ति) की प्राप्ति होगी ॥ २ ॥ अहं हरे तव पादैक मूल दासानु दासो भवितास्मिभूयः ॥ २४ ॥ श्री मद्भागवत स्कन्ध ६ अ० ११ ॥ अर्थ- हे हरि ! भवदीय (आपके) श्री चरणकमल

ही जिनको एकमात्र आश्रय का मूल हैं। ऐसे जो आपके दास हैं, उनके भी दासों का मैं दास हूँ ॥ ग० वो० पृ० १०५ से १०८ तक ॥

नोट—जो गुरु अपने शिष्य का जीव सम्वन्धी या जड़ माया सम्बन्धी वे ढंगे नाम रखते हैं, यह उनकी महान भूल है। वह नाम श्री वैष्णव सिद्धान्तानुसार निरर्थक हैं, और उन नामों से नाम संस्कार भी नहीं माना गया है। यथा-हंसदास नर्वदादास, छबीलादास, गुलाबदास कमलदास; लोटादास, फक्कड़दास, लक्कड़दास, दुर्गादास, देवीदास भवानीदास, वनखण्डीदास, पंचमदास, कालीदास, भोलादास, गणेशदास, शीतलदास, काशीदास, इत्यादि नाम नहीं रखना चाहिये। विशेष ध्यान देने वाली तो एक बात यह है कि--जन्मजात नाम का प्रथम अक्षर लेकर ही नाम करण किया जाये, सर्व अनर्थों की जड़ तो यही है. वैष्णवीय शास्त्रों में इसकी कोई चर्चा नहीं है, तथापि इस अनर्गल परम्परा को सभी मानते हैं. यह अनुचित है। पंचसंस्कारों में इस परम्परा की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इसलिये प्रमाद भरी यह परम्परा कि घर वाले नाम का प्रथम (पहला) अक्षर नाम संस्कार में अवश्य ही रक्खा जाय बिलकुल गलत है। परम श्रध्येय पूज्य संतो से निवेदन है कि शास्त्रीय विधानानुसार ही भगवान् के नाम सम्वन्धी स्पष्ट या तात्पर्य वाचक नाम धरें। यथा—

श्री रामदास, श्री जानकीदास, श्री कृष्णदास, श्री नारायणदास, श्री लक्ष्मी दास, श्री जगदीशदास. श्री वासुदेवदास, श्री हरिदास, श्री माधवदास, श्री गोविन्द दास, श्री मधुसूदनदास, इत्यादि या तात्पर्य निकलने वाले नाम यथा - रघुनाथदास रघुवीरदास, रघुनन्दनदास! राघवदास, अवधेशकुमारदास गोपालदास, गिरिधरदास, रणछोरदास, ब्रजमोहनदास, जानकीवल्लभदास इत्यादि नाम ही रखना चाहिये। कुछ परम्पराओं में भगवान् के नाम के बाद में शरण लगाकर नामकरन करने का विधान है। यथा—श्री रामशरण, श्री जानकीशरण श्री सीताशरण, श्री रघुवीरशरण, श्री रघुनन्दनशरण, श्री वैदेहीशरण, श्री वैदेहीवल्लभशरण, श्री वैदेहीकान्त शरण, श्री मैथिलीशरण, श्री रामसेवकशरण, श्री सीतारामशरण, श्री प्रियाप्रीतमशरण, इत्यादि नाम राखे जाते हैं। भगवत्‌शरण होने का प्रमाण शास्त्रों में भरा हुआ है। इसलिये दास या शरण यह दोनों ही शब्द अपनी परम्परानुसार मान्य हैं। किसी किसी परम्परा में भगवान् के नाम के अन्त में प्रसाद शब्द का प्रयोग किया जाता है। भगवत्प्रसाद प्राप्ति के लिये प्रसाद शब्द भी अति उत्तम है।

अस्तु नाम के अन्त में दास, शरण, प्रसाद शब्द अपनी परम्परानुसार

लगना चाहिये, परन्तु नाम में भगवान् का स्पष्ट नाम रखना चाहिये । कोई कोई सन्त अपने शिष्यों का नाम गरीबदास, घसीटनदास, कमलदास गुलाबदास, लोटा-दास, कमंडलदास, लक्कड़दास, पियारेदास, मौजीदास, इस प्रकार रखते हैं। यह सभी नाम व्यर्थ हैं. सोचिये तो सही कि जो भगवान् की शरण हो गया वह गरीब दास कहा जाये, यह ठीक नहीं है । हाँ गरीब निवाजदास भले ही ठीक है। इस लिये भगवान् के नाम सम्बन्धी ही नाम रखना चाहिये । चाहे नाम अनर्गल भले ही क्यों न हो जाये, परन्तु घर वाले नाम का प्रथमाक्षर अवश्य ही रखना यह बुद्धि की दरिद्रता (शत्रुता) नहीं करनी चाहिये।। घर वाले सभी सम्बन्धों को व्यव-हारों को बदल कर भगवदानुकूल ही रखना वैष्णवों की वैष्णवता है। हाँ यदि घर-वाला ही नाम भगवान् के नामों में हो तो उसी में दास, शरण, प्रसाद लगा देना चाहिये। यथा—रामसहाय, रामकुमार, रामदुलारे, कृष्णदत्त, गोपालभट्ट, नरसिंह, नारायण इत्यादि तो इन नामों को बदलने की आवश्यकता नहीं है। यदि बदल भी दे तो भी अपनी उपासनानुसार ही नाम धरे ॥

ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि नाम भगवान् के नाम सम्बन्धी हों, साथ ही साथ अपनी उपासना का विचार भी न भुलाया जाय गुरु शिष्य को मन्त्र प्रदान करें उसी के अनुसार नाम भी धरें। यद्यपि भगवान् के अनेक नाम हैं सभी की अपार महिमा है, तथापि गुरु को उचित है कि मन्त्र के अनुसार ही नाम भी धरे। यथा—जिसे श्री सीताराम मन्त्र दिया जाये, उसका श्री सीताराम जी के नामों में से नाम धरे। जैसे सीतारामदास, रामदास, जानकीदास इत्यादि गोपाल मन्त्र देने वाले को कृष्णदास, गोपालदास, गोविन्ददास, इत्यादि नारायण मन्त्र वालों को श्रीमन्नारायणदास, कमलादास, इत्यादि । इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। कि मन्त्रदाता स्वयं नित्य जिस मन्त्र का जप करता हो, शिष्य को भी वही मन्त्र देवे । तभी शिष्य का कल्याण होगा । और यदि अपने आप जपने वाले मन्त्र को न देकर शिष्य को अन्य (दूसरा) मन्त्र देता है, तो वह शिष्य को ठगता है। शिष्य के कल्याण की भावना नहीं है। जो व्यक्ति जिस मन्त्र का जापक है, उसको वही मन्त्र देने का अधिकार है। जप करने पर ही किसी में मन्त्र की शक्ति आती है। विना जपे नहीं। यदि केवल मन्त्र से कल्याण होना संभव रहता, तो पुस्तकों में सभी मन्त्र लिखे ही हैं, उन्हीं में पढ़ लिये जायें। गुरुवरण करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। परन्तु ऐसी बात नहीं है, गुरुवरण करने की परमावश्यकता है। किन्तु गुरू जी भी सत्यता के साथ न्याय पूर्वक शिष्य से सुहृता का व्यवहार करें॥

अब मन्त्र संस्कार की चर्चा की जाती है ॥

[मन्त्र संस्कार]

तिलक कंठी भगवदायुधों की छाप भगवदास सम्बन्धी नाम के पश्चात ही मन्त्र का संस्कार करना चाहिये । उपर्युक्त संस्कारों के बिना मन्त्र संस्कार करना निषेध है । यथा—

तस्मात्तापादि संस्कारास्सर्वमन्त्रेषु सत्तमोः । अध्यापयेत्ततः पश्चादन्यथा नरकं व्रजेत ॥ अकृत्वावैभवं मन्त्रं मन्त्रमध्यापयेद्गुरुः । रौरवं नरकं याति यावदाभूत संप्लवम् ॥

दीक्षा पद्धति पृ० ७१ श्री अवधकिशोरदास जी महाराज के द्वारा प्रकाशित ॥
अर्थ—भगवदायुधों की तप्त छाप, तिलक, कंठी, नाम के बाद ही आचार्य (गुरु) शिष्य को मन्त्रोपदेश करे । अन्यथा गुरु को ही रौरव नरक में जाना पड़ता है ।

नोट—वर्तमान समय में बुद्धिजीवी होने का दावा करनेवाले संकुचित बुद्धिवाले लोगों का कहना है कि-कंठी, तिलक, छाप, माला. इत्यादि ये तो वाह्याडम्बर है, अर्थात दिखावा मात्र है, इसमें कोई तत्त्व नहीं है. जीव का कल्याण तो भगवतमन्त्र से होगा, इसलिये कंठी तिलक छाप इत्यादि की भगवत्प्राप्ति में आवश्यकता नहीं है । भगवान् तो भाव प्रेम के भूखे हैं, वह तो घट घट की बात जानते हैं, बाहरी वेष बनाने से प्रसन्न नहीं होते । ऐसे अनेक बातों की कल्पना करके कंठी तिलक छापादि लेने से संकोच करते हैं । अपने को इस्टन्डर्डमैन अर्थात् उच्चविचार वाले न्युरिशर्चर (नवीन सोध करने वाले) व्यक्ति कंठी तिलक छाप माला धारण करने में इन्शल्ट (अपमान या वेइज्जत) समझते हैं ।परन्तु दिन भर झूठ बोलना किसी व्यक्ति को ठगना, रिश्वत् (घूँस) लेना; भक्षाभक्ष्य को खाना, स्वच्छन्द विहार करना, क्लबों में मद्य पीकर कई स्त्री पुरुष एक साथ नाचना, पशुओं की भाँति अन्याय से धन कमाकर अपने शरीर एवं परिवार का पोषण करना, इत्यादि अनेक घृणित कर्मों को करने में संकोच न करके सभ्यता का अंग मानते हैं । तथा भगवान् के तिलक कंठी माला छाप को पाखण्ड और इनको धारणकर्ता को पाखण्डी मानते और कहते हैं; यह उनकी बुद्धि की दरिद्रता है । और कुछ नहीं ॥

कितने सज्जन तो महानुभावों से कहते हैं कि हमे यह बाहरी भुलावा में नहीं फसना है, हम तो समझदार व्यक्ति हैं । तिलक कंठी छाप लगाना; हम जैसे समजदारों को उचित नहीं है, हम भ्रम में तो अनपढ़ लो । फसते हैं, हम विज्ञ लोग

इस चक्कर में नहीं फसेंगे, हमे तो आप भगवान का मन्त्र शिर्फ दीजिये हमारा कल्याण हो जावेगा। उसी प्रकार पैसा के लोभी व्यक्ति जिसे गुरुता का पता नहीं है, गुरु बनकर पुजाना खाना ऐश आराम करना प्रिय लोग तुरन्त मन्त्र दे देते हैं यह नहीं सोचते कि इस प्रकार अविधि से शिष्य के कल्याण की बात तो दूर रही, प्रथम अपने को तो नरक जाने से बचाओ। जब कि अविधि करने पर गुरु नरक जायेंगे तब शिष्य कहाँ जायेगा इसको बुद्धि जीवी लोग सोचें। अस्तु महानपुरुषों सद्गुरुओं से विनम्र निवेदन है कि कंठी तिलक छाप इत्यादि श्री वैष्णवीय संस्कारों को बिना किये मन्त्र दीक्षा संस्कार नहीं करें॥

मन्त्रोयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः। फलदश्चैव सर्वेषां साधकानांन संशयः ॥ २० ॥

(पूर्वराम तापनीयोपनिषद्) अर्थ—श्री राम शब्द मन्त्र वाचक है, और श्री रामचन्द्र जी वाच्य हैं, राममन्त्र और मन्त्रार्थ मन्त्र के साधकों को मोक्षादिक सभी फलों को देने वाला है, इसमें कुछ भी संशय नहीं ॥ २० ॥ राममन्त्रार्थ विज्ञाती जीवनमुक्तो न संशयः ॥ १६ रामरहस्योपनिषद अ० ५ ॥ गर्भ जन्म जरामरण संसार महद्भयात्संतारयतीति तस्मादुच्यते तारक मिति ॥

७ (श्रीरामोत्तर तापन्युपनिषद्)

अर्थ—श्रीराममन्त्रार्थ को जानने वाला जीवन मुक्त है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १६ ॥ गर्भ जन्म, बुढ़ापा तथा मरण देने वाले संसार से तार देने वाला होने के कारण श्रीराम मन्त्र तारक कहा जाता है। पुनः अद्वयतारको।निषद् पंक्ति ५ भी देखो ॥

अखण्डैकरसानन्दस्तारकंब्रह्म वाचकः। रामायेति सु विज्ञेयः सत्यानन्द चिदात्मकः ॥ २ ॥ नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम्। सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षवः ॥ ३ ॥

(श्रीरामोत्तर तापनीयोपनिषद् निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित) अर्थ—श्री याज्ञवल्क्य जी बोले कि हे भरद्वाज जी! श्रीराम मन्त्र में बीज (प्रथम) अक्षर है, उसको 'स्वप्रकाशः'— स्वयं प्रकाशमान, परंज्योतिः स्वानुभूत्यै— अपने ही ज्ञान करके जानने वाला, कुचिन्मयाः— चितस्वरूप (चैतन्य रूप) श्री रामचन्द्र ही जानो ॥ १ ॥ और रामायशब्द को अखण्ड एकरस, आनन्द, तारकब्रह्म, सत्यानन्द, और चैतन्य जानो ॥ २ ॥ 'नमः' पद पूर्ण आनन्द देने का कारण है, ऐसा जानो, इस नमः पद से ही श्रीरामचन्द्रजी को सब देवता और मुमुक्षुजन नमस्कार करते हैं ॥३॥

आत्पर्य्यार्थ—छय अक्षर वाला श्रीराम मन्त्र और श्री राम जी दोनों अभेद हैं । श्रीराम मन्त्र या नाम जपते समय मन्त्र के अर्थ का अनुसंधान करे और सब चिन्ताओं को छोड़ दे, तो वह इस दुख रूपी पापमय संसार से पार हो जायेंगे । श्री अग्रस्वामी जी कृत "रहस्यत्रय" के श्री राममन्त्रार्थ के अन्त में लिखा है कि—

रामइति वीजेनानन्यार्ह शेषत्वं, रामाय इत्यनेनानन्यार्ह भोगत्वं, नमः शब्दे नानन्योपायत्वमिति तात्पर्य्यार्थः ॥

अर्थ—श्रीराम के वीज से अनन्यार्ह शेषत्व, रामाय इस पद से अनन्यभोग्यत्व और नमः शब्द से अनन्य उपाय स्वरूप श्री राम जी प्रतिपादित हैं । अर्थात् श्रीराम मन्त्र का स्पष्ट अर्थ हुआ कि— मैं श्री राम जी का ही शेष (अंश) हूँ । श्री राम जी हमारे शेषी (अंशी) हैं । मैं अन्य किसी भी देवी देवता का शेष (अंश) नहीं हूँ, न कोई देवी देवता हमारा शेषी है । और श्री राम जी ही हमारे अनन्य भोक्ता और मैं श्री राम जी का ही अनन्य भोग्य हूँ, अन्य देवता न तो मेरे भोक्ता ही हैं न मैं उनका भोग्य ही हूँ । तथा श्री राम जी ही एकमात्र उपाय (रक्षक) हैं और मैं श्री राम जी का रक्ष्य हूँ । श्री राम जी के अतिरिक्त अन्य देवी देवता न तो मेरे रक्षक हैं, न मैं उनका रक्ष्य ही हूँ । यही अकारत्रय है, श्री राम मन्त्र में विस्तार रूप से अकारत्रय समाहित है, जिसे गुरु द्वारा जाना जाता है । अस्तु गुरु वनने वाले महानुभावों से प्रार्थना है कि शिष्य को अकारत्रय का उपदेश अवश्य ही करदें । यह उत्तरदायित्व गुरु का ही है । इसे पूरा न करने पर गुरु को शिष्य के ठगने का दोष लगेगा और शिष्य भी अनन्यता को न समझने के कारण यत्र तत्र (जहाँ तहाँ) भटकता रहेगा ॥

क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव । ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुचः ॥ २५ ॥ त्वत्तोवा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम् । जीवन्तो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते ॥ २६ ॥ रामोत्तर तापनीयोपनिषद् ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी शिव जी से कहते हैं कि—हे शिव जी ! इस तुम्हारे काशी क्षेत्र में भक्ति पूर्वक षडक्षर राम मन्त्र से जो हमारी सेवा पूजा करेंगे । अर्थात् हमारे चर्चा विग्रह की पूजा करेंगे, तो उनको मैं ब्रह्म इत्यादि पापों से मुक्त कर दूंगा । पाप के निवारणार्थ तुम कोई शोक मत करो ॥ २५ ॥ तुम्हारे द्वारा अथवा ब्रह्मा के द्वारा अथवा किसी आचार्य द्वारा काशी में या मगध में चाहे जहाँ पर जो कोई भी, राम मन्त्र से या राम नाम से जीवों को मुक्ति दे सकता है । जो

कोई षडक्षर राम मन्त्र प्राप्त करेंगे, तो वह जीवन में ही मन्त्र सिद्ध होंगे, और मरने पर मुक्त होकर हमको प्राप्त होंगे ॥ २६ ॥ षडक्षरेण मन्त्रेण हरिपूजन कृन्नरः ॥६८॥ पद्म पु० क्रियायोग सार खंड अ० १५ वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई की ॥ षड़क्षर श्री राम मन्त्र से मनुष्य भगवान् का पूजन करे । ६८ ॥ आसन पाद्य अर्घ स्नान धूप दीप नैवेद्य आरती आदि में जो मन्त्र रूप में पौराणिक श्लोक बोले जाते हैं । उन श्लोकों को न बोल कर षड़क्षर श्रीराम मन्त्र को ही बोलता रहे । पूजा आरम्भ करते समय ही श्रीराम मन्त्र का जप करना आरम्भ करदे, और पूजन के अन्त तक जपता रहे । श्री राम पूजन के लिये श्रीराम षड़क्षर मन्त्र से बढकर अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है । यदि पुजारी को वैदिक अन्य मन्त्र याद हों, तो वह वैदिक अन्य मन्त्र भी बोल सकता है, परन्तु प्रधानता श्रीराममन्त्र की ही होनी चाहिये, श्रीरामचरित मानस में प्रभु ने स्वयं श्री शबरी जी से कहा है । कि—मन्त्रजाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकाशा ॥ अ० कां० दो० ३६ ॥ इसलिये श्री सीताराम पूजन में श्री सीताराम जी के षड़क्षर युगल मन्त्र द्वारा पूजन करना ही सर्वश्रेष्ट है ।

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः । जानाति भगवान्शम्भुर्ज्वलन्तपावक लोचनः ॥ ४ ॥ रामाऽन्तो वह्निपूर्वो नमोन्तः स्यात षडक्षरः । तारको मन्त्रराजोऽयं संसार विनिवर्तकः ॥ ५ ॥ रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ ६ ॥ वृ० ब्र० सं० पा० २ अ० ७ ॥

अर्थ—श्रीमन्नारायण जी श्री लक्ष्मी जी से कहते हैं कि—श्रीराम षडक्षर मन्त्रराज के माहातम को भली भाँति भगवान् शिव जानते हैं । जिनके नेत्र (आँख) जलती हुई अग्नि के समान हैं ॥ ४ ॥ राम "चतुर्थी विभक्ति एक वचन" (आय) के सहित अन्त में है । और अग्नि बीज आदि में है, फिर सबके अन्त में नमः शब्द है । यही षड़क्षर या तारक श्रीराम मन्त्रराज है, जो अपने आश्रितों को (जापकों को) संसार सागर से तारता है ॥ ५ ॥ तारक षडक्षर श्रीराम मन्त्रराज का स्वरूप रामशब्द के पूर्व अग्नि बीज और रामशब्द में आय तथा अन्त में नमः है । योगी लोग जिसमें रमते हैं, जो अनन्त है, सत्य है आनन्द स्वरूप है, चैतन्यात्मा है, यही दो वर्ण (अक्षर) रा और म का अर्थ होता हैं अर्थात् राम पूरे पद (शब्द) का यही अर्थ हुआ । और यही राम शब्द परब्रह्म कहा जाता है, अर्थात् राम शब्द ही परब्रह्म है । इसलिये मनुष्य अपने कल्याणार्थ श्रीराम नाम या श्रीराम षडक्षर मन्त्रराज को अवश्य ही जपे ।

श्रीरामनामामृत मन्त्र बीजं संजीवनं चेन्मसि प्रविष्टम् । हलाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः ॥ अ० रा० म० का० सर्ग ७ का ६७ ॥

अर्थ--श्रीराम नाम रूपी अमृत बीज की संजीवनी यदि मन में बैठ गई तो हलाहल विष प्रलय की अग्नि और मृत्यु के मुख में भी घुस जाने पर भी कोई भय नहीं रहता ॥ ६७ ॥

जाप्यं तत्तारकाख्यं मनुवरमखिलैर्वह्नि बीजं तदादौ । रामोङे प्रत्यान्तो रसमित सुभदः स्वक्षरः स्यान्नमोऽन्तः ॥१०॥ (श्री वैष्णवमताब्जभास्कर)

अर्थ-सम्पूर्ण भगवत्मन्त्रों में श्रेष्ट, अग्नि बीज बिन्दु युक्त रा जिसके आदि में हो और राम शब्द के साथ चतुर्थी विभक्ति ङे एक वचन "आय" अन्त में हो, और सबके अन्त में नमः हो, ऐसे रस अर्थात् ६ अक्षर का मोक्ष देने वाला सुन्दर षडक्षर श्रीरामतारक मन्त्र मुमुक्षुओं के जपने योग्य है ॥१०॥ और भी देखिये कि-गति बोध उत्तरार्ध पृ० १२६॥

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रह्मगद्यते । सर्वैश्वर्यप्रदंनृणां सर्व काम फलं प्रदम् ॥५४॥ (वृद्धहारीतस्मृतिधर्मशास्त्र अ० ६ ॥)

अर्थ- महाराज श्री दशरथ नन्दन भगवान श्री रामचन्द्रजी का ६ अक्षर वाला मंत्र है, उसे तारक मंत्र कहते हैं। यह षड्क्षर श्री राम मंत्र मनुष्यों को जपने पर लौकिक तथा पार लौकिक वैभव देता और सभी मनोरथों को पूर्ण करता है। अर्थात् लोक वैभव तथा मोक्ष (भगवद्धाम) देता है ॥

वृथा धर्मो वृथा कर्म वृथा जीवनमस्ति च । राममन्त्रविहीनस्य वेद विद्या विदोऽपि च ॥ (वालमीकि संहिता अ० १ श्लोक १५॥)

अर्थ-सद् गुरु से श्री राममंत्र प्राप्त किये विना धर्म, कर्म जीवन, वेद विद्या सब व्यर्थ हैं, इस लिये जीवन को सफल बनाने के लिये श्री राममंत्रराज अवश्य जपना चाहिये। अब यह बताया जाता है कि इस महा मंत्र का जपने का अधिकार किसे है।

ब्राह्मणाः क्षत्तिया वैश्याः शूद्रश्चापिगुणान्विताः श्रद्धया परयायुक्तान्ते च तस्याधिकारिणः ॥१३॥ वालमीकि सं० अ० २॥ ग० बो० उ० खं० पृ० १३॥

अर्थ-इस राम मंत्र के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र तथा और भी अनेक गुण वाले लोग हैं। परन्तु इनमें जो श्रद्धा से युक्त हैं वही परम अधिकारी हैं। पुनः देखिये-

ब्राह्मणाः क्षत्तिया वैश्या स्त्रियाः शूद्रास्तथेनराः । तस्याधिकारिणः सर्वे

ममभक्तास्तु ते यदि ॥ [पद्म पु०उ० खं० अ०२२३ का ३७ बम्बई ।]

अर्थ-भगवान् कहते हैं कि-क्षत्री, वैश्य, स्त्री शूद्र तथा अन्य भी जो न्यून वर्गों में जन्म लिये हैं। उनके हृदय में यदि मेरी भक्ति करने की भावना है, तो सभी वर्गों के सभी वर्ण और आश्रम वाले स्त्री पुरुषों को मेरा मन्त्र लेने का समानाधिकार है। गति वोध उ० खं० पृ० ११४॥

पतिव्रतानां स्वर्लोकइति शास्त्रस्य निर्णयः ॥ १६ ॥ प्रपन्नामृत अ० ११८ ॥ पतिव्रता स्त्रियों को पतिसेवा से स्वर्गलोक मिलता है। और गर्भोपनिषद में लिखा है कि--पतिव्रता स्त्री साढ़े तीन करोड़ वर्षो तक स्वर्ग में रहती है। पुनः जन्म होता है। वेदान्त शास्त्र का निर्णय है कि मोक्ष का साधन ज्ञान है वह ज्ञान गुरु कृपा से प्राप्त होता है. अस्तु सभी मुमुक्षुओं को गुरु वरण करके आत्मा परमात्मा का स्वरूप विरोधी माया तथा ईश जीव के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करके भगवत् भक्ति परायण होकर अपना आत्म कल्याण करना चाहिये ॥ ग० वो० उ० पृ० १४५ ॥

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्येप्रतिलोमानु लोमजाः । लोकाश्चाण्डाल पर्यंतं सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥ १५ ॥ अगस्त सं० अ० ८ ॥

अर्थ—पतिव्रता स्त्री और भी लोम प्रतिलोम चाण्डाल आदि पर्यंत सभी जीव भगवद्दीक्षा लेने के अर्थात् गुरु वरण करके मन्त्र लेने के पूर्ण अधिकारी हैं ॥ १५ ॥

पतिव्रता महासाध्वी ममभक्ति रता सदा ॥ ७ ॥ स्कंद पु० वैष्णव सं० मार्गशीर्ष मास माहात्म्य अ० ११ श्री वैंकटेश्वर प्रेस वम्बई की ॥

अर्थ--भगवान् कहते हैं कि--पतिव्रता महासाध्वी स्त्री को सदा मेरी भक्ति में रत रहना चाहिये। ७। ग० वो० पृ० १४८ ॥ नोट- भगवान् की आज्ञानुसार पतिव्रता देवियों (स्त्रियों) को भगवत् भक्ति अवश्य ही करना चाहिये। भक्ति करने का ज्ञान गुरु कृपा से ही प्राप्त होगा। अस्तु पतिव्रता महिलाओं को अवश्यमेव गुरु वरण करके भगवत भजन करना चाहिये। यदि मन भगवान् की भक्ति भावना में लगा रहेगा तो पतिव्रत धर्म निरविघ्न पूर्ण होगा, अन्यथा न जाने कहाँ भटक जायेगी। वर्तमान समय में पश्चात् सभ्यता के अनुयायी मनुष्य अपनी वहू बेटियों को भगवत् भक्ति करने का पाठ न पढ़ाकर उसे पाखण्ड बताकर नवीन ढंग की शिक्षा देते हैं, उसी का दुष्परिणाम है कि बड़े नगरों (शहरों) की बालिकायें बहुमात्रा में चरित्र हीन हो जाती हैं। यदि उन्हें पतिव्रता धर्म की महिमा तथा भगवत् भक्ति का उपदेश बालजीवन में ही भली भाँति मिल जाये, तो चरित्र भ्रष्ट होने का दोष उत्पन्न

ही न हो। बन्धु वर्ग इस पर ध्यान न देकर केवल कालेजी शिक्षा के द्वारा ही नन्हीं मुन्नी बहिनों को सती, अनुसुइया, एवं सावित्री के रूप में देखना चाहते हैं। यह भारी भूल है। बालिकाओं को पढ़ाया लिखाया जाये, यह तो उत्तम है, परन्तु साथ ही साथ उनके चरित्र का भी अध्यन गम्भीरता पूर्वक (निरीक्षण) करते रहना चाहिये। स्त्री या पुरुष बालक या बालिका कोई भी अपने मन को रोकने में समर्थ नहीं हैं। वही स्त्री पुरुष बालक बालिकायें अपने मन को रोक सकते हैं। जो धर्म परायण हैं। धर्म को जीवन मानते हैं। और अनन्य भाव से भगवत् भजन स्मरण कीर्तन पाठ पूजन करते हैं। इन सभी कार्यों को पाखण्ड बताकर धर्म निर्पेक्ष का डंका बजा कर रेडियो के गाने सुन कर पेपर (अखबार) पढ़कर सिनेमा देखकर उपन्यास को ही वेद का बाप मान कर स्वाध्याय करने वालों की तो यही गति होती रहेगी जो हो रही है। आज के विज्ञानी लोग मनोरंजन के द्वारा ही भक्ति मुक्ति और भगवान् को खरीदना चाहते हैं, यह भारी भूल है। मानव जीवन की सफलता तो श्री हरि भजन में ही है।

अंशांशे रामनामश्च त्रयः सिद्धा भवन्ति हि। बीज मोंकार सोहं च सूत्रे-रुक्तमिति श्रुतिः॥ २१॥ रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः॥ ३४॥ [पंच सर्गीय महारामायण सर्ग ५]

अर्थ—शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि—सूत्र और वेद कहते कि—बीज ओंकार और सोहं यह तीनों श्रीराम नाम के अंश से सिद्ध होते हैं। २६। जो ओं मोक्ष देता है वह श्रीराम नाम से उत्पन्न हुआ है॥ २६॥

रामएव परब्रह्म रामएव परंतपः। रामएव परतत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥ ५॥ (श्री रामोपनिषद)

अर्थ—निश्चय करके श्री राम जी ही परब्रह्म है, श्री राम जी ही परम तप और श्री राम जी ही परम तत्त्व हैं, अस्तु श्री राम जी ही तारक ब्रह्म (संसार सागर से मुक्त करने वाले) हैं॥ इसलिये मानव मात्र को श्री राम जी का भजन करना चाहिये।

॥ मन्त्र दीक्षा देने का समय, मास, तिथि, दिन, पक्ष, देश॥

स्वगृहोक्त प्रकारेण तदेतद्विदधीतवै। ५। मधुमासे भवे दुःखं माधवे रत्न संचयः। मरणं भवतिज्येष्ठे आषाढ़े बन्धुदर्शनम्॥ ६॥ समृत्तिः श्रावणे नूनं भवेप् भाद्रपदेक्षयः। प्रजानामाश्विनेमासि सर्वतः शुद्धिमेवहि॥ ७॥ ज्ञानं स्यातकार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि। पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधा विवर्धनम्॥ ८॥ फाल्गुने

च सामृद्धिः स्यान्मत्समांसं विवर्जयेत् रवौ गुरौ सिते सोमे कर्तव्यं बुध शुक्रयोः ॥९॥
अश्वनी रेवती स्वाती विशाखा हस्तभेषु च पुष्यः शतभिषक्चैव श्रवणाद्रांधनिष्ठिका ॥१०॥
ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेवकुर्यान्मन्त्राभिषेचनम्। पूर्णिमा पंचमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ॥११॥
द्वादश्यामपि कर्तव्यं षष्ठ्यामपि विशेषतः । त्रयोदशी च नवमी प्रशस्ताः सर्व कामदाः ॥१२॥
पंचांगशुद्धिः दिवसे स्वोदये तिथि वारयोः । गुरु शुक्रोदये शुद्धः लग्ने द्वादश शोधिते ॥१३॥
चन्द्रतारानुकूले च शस्यते सर्व कर्म सु । सूर्य ग्रहणकालेतु नान्यदन्वेषणं भवेत् ॥१४॥
सूर्य ग्रहण कालेन समानो नास्तिकश्चन । तत्र यद्यत्कृतं सर्व अनन्त फलदं भवेत् ॥१५॥
न मास तिथि वारादि शोधनं सूर्यपर्वणि । तदातीष्टं गृहीतं च तस्मिन्काले मुनीश्वर ।१६॥
सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनायासेन वेगतः । अतस्तत्रैव रामस्य मन्त्रतीर्थाभिषेचनम् ॥१७॥
अगस्त सं० अ० १७॥ पुण्यतीर्थे च गंगायां लोलार्के सूर्यपर्वणि । तस्मै मन्त्रवरं प्रदा-
न्मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥१५। अगस्त सं० अ० ७॥

अपने घरके कृत्यानुसार गुरु शिष्य को मन्त्र (दीक्षा) देवें । ५ । चैत-मास में दीक्षा मन्त्र लेने से दुख होता है । वैशाख में मन्त्र लेने से धन संग्रह होता है । जेठ में दीक्षा लेने से मरण होता है । अषाढ़ में (वन्धुओं) प्रेमियों से मिलन होता है । श्रावण में मन्त्र लेने पर धनादि व्यय होता है । भादों में धनादि नाश हो जाता है । आश्विन में दीक्षा लेने पर परिवार बढ़ता है । और भी सब प्रकार की शुद्धि एवं मंगल होता है । किन्तु ध्यान रहे कि क्वार के कृष्ण पक्ष में न कर के शुक्ल पक्ष में ही विशेष लाभ कर है । कार्तिक में ज्ञान की वृद्धि (बढ़ती) होती है मार्गशीर्ष (अगहन) में सभी प्रकार के सुख होते हैं । पूस में दीक्षा लेने पर ज्ञान (बुद्धि) का नाश होता है । माघ में धारणा वाली बुद्धि होती है । अर्थात् ज्ञान का विकाश होता है । ८ । फाल्गुन में सब प्रकार से धन की वृद्धि होती है । अधिक मास मलमास (पुरुषोत्तम मास) में दीक्षा लेवैं । सभी महीनों में शुक्ल पक्ष में ही मन्त्र लेना अधिक लाभकर होगा । यद्यपि चैत में दीक्षा लेने पर दुख होना कहा गया है । तथापि श्री रामजन्म के पर्व अवसर श्री रामनवमी को अनन्त फल होना अन्यत्र बताया है ॥ यथा—चैत्र शुक्ल नवम्यां व कार्तिकी पूर्णिमा दिने । सीता जन्म दिने चापि विवाह दिवसे शुभे ॥ राज्याभिषेक काले व श्री राम विजये दिने । अन्ये शुभे च काले वा सुदीक्षां धारयेत्सुधीः ॥ (सनतकुमार संहिता अ० ६ श्लोक २-३ ॥)
अर्थ-चैत्र शुक्ल श्री रामनवमी कार्तिक पूर्णमासी वैशाख शुक्ल श्री जानकी नवमी और अगहन में शुक्ल पन्चमी श्री सीताराम व्याह, भगवान् श्री राम जी का राज्या भिषेक तथा श्री राम विजय

अथवा बसंत पन्चमी

कार्तिक शुक्ला अक्षय नवमी वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया असाढ़ शुक्ल द्वितिया को रथयात्रा तथा अषाढ़ पूर्णिमा (श्री गुरु पूर्णिमा) दीपावली होली रक्षा बन्धन अनन्त चतुर्दशी भादों शुक्ल चतुर्दशी भादों कृष्ण वावन द्वादशी श्री कृष्णजन्माष्टमी माघ कृष्ण सप्तमी को श्रीरामानन्द जयन्ती इत्यादि शुभअवसरों पर मंत्रदीक्षा लेने पर अधिक लाभ होताहै, दीक्षापद्धति पृ० २६ से ॥ गनि वो।पृ० २२६ से प्रत्येक महीनामें जो शुभ है उसके शुक्लपक्ष में रविवार गुरुवार सोमवार बुधवार शुक्रवार इन दिनों में दीक्षा (गुरु मन्त्र लेवै) ॥ ९ ॥ अश्विनी रेवती, स्वाती विशाखा. हस्त पुष्य, शतभिषक् श्रवण आर्द्रा धनिष्ठा ॥ १० ॥ ज्येष्ठा उत्तरा इन नक्षत्रोंमेंगुरु शिष्य को मन्त्र देवै। पूर्णिमा पंचमी द्वितीया सप्तमी ॥ ११ ॥ एकादशी अष्टमी त्रयोदशी नवमी यह तिथियाँ श्रेष्ठ और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं। अतएव गुरु शिष्य को इन तिथियों में मन्त्र देवे ॥ १२ ॥ गुरु पंचांग (पत्रा) से दिन तिथि नक्षत्रादि शोधे। गुरु और शुक्र के उदय में १२ लग्नों में जो लग्न शुद्ध हो उसे ही ले लेवं ॥ १३ ॥ और चन्द्रतारा जो सभी शुभ कर्मों में श्रेष्ठ होते हैं, उन्हें दीक्षा में ले। सूर्यग्रहण में दीक्षा (मन्त्र) लेना अति उत्तम होता है। सूर्यग्रहण काल में किसी भी दिन तिथि लगन नक्षत्र इत्यादि का विचार बिना ही किये सत्शिष्य को मन्त्र देवैं ॥ १४ ॥ सूर्यग्रहण काल के समान और कोई भी समय शुभ नहीं है। क्यों कि इस काल में जो भी कर्म किये जाते हैं वह अनन्त फल को देते हैं। अतएव इस परम पावन समय में गुरु सिष्य को मन्त्र देवै ॥ १५ ॥ सूर्यग्रहण पर्वकाल में महीना तिथि दिन आदि का विचार न करके ही मन्त्र देवै। जो मन्त्र स्वयं अपने सद्गुरु से प्राप्त करके नित्य जपता हो वही मन्त्र दे; दूसरा नहीं। कोई कोई महानुभाव स्वयं तो श्री सीताराम मन्त्र जपते हैं। और गृहस्थ भक्तों को वासुदेव मन्त्र या और मन्त्र दे देते हैं। वह कहतेहैं कि श्री सीताराम मन्त्र तो विरक्तों को लेने का अधिकार है। किसी किसी प्रतिष्ठित गद्याचार्य पीठों में भी महान्त वर्ग ऐसा ही करते हैं। यह भारी भूल है। इसका अवश्य ही सुधार होना चाहिये। श्री वैष्णवीय किसी भी सम्प्रदायाचार्य ने अपने ग्रन्थों में नहीं लिखा है कि गृहस्थ वासुदेव या अन्य मन्त्र जपे विरक्त ही राम मन्त्र का अधिकारी है। सभी भगवत्कृपा चाहने वालों को समान ही अधिकार है। कुछ गृहस्थ पंडित ऐसा कहा करते हैं कि—कंठी तिलक छाप विरक्तों को धारण करना चाहिये ग्रहस्थों को आवश्यक नहीं। वे सज्जन विशेष ध्यान दें। कि गृहस्थ और विरक्त दोनों को पंच संस्कार प्राप्त करने का समानाधिकार है किसी को भी कम या अधिक नहीं।

विरक्तों को कोपीन कमण्डलादि विशेष हैं परन्तु कंठी तिलक तप्त छाप मन्त्र का स्त्री पुरुष गृहस्थ विरक्त सभी को समान ही अधिकार है । यथा—

विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकामएव च । तापादिना विमुक्तस्यात्पातकैः कोटिजन्मजै ॥ [वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ५ श्लोक ८ ॥]

अर्थ—गृहस्थ हो या विरक्त हो सकामी हो या निष्कामी हो, जो भगवदायुधों की तप्त छाप को धारण करता है तो निश्चय ही उसके अनेक जन्मों के पाप नाश हो जाते हैं । और भी देखिये । — ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक को-स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रम्लेच्छा याऽन्त्यज जातयः ऊर्ध्वपुण्ड्रधराः सर्वे नमस्या देवता इव ॥ इस श्लोक में स्त्री वैश्य शूद्र म्लेच्छ अन्त्यज न छूने योग्य, और सभी जाति के लोगों को ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक धारण करना बताया है ॥ वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० १३ श्लोक ५७ ॥ इसी प्रकार तुलसी धारण अर्थात् कंठी पहरने का प्रमाण है । यथा— तुलसी काष्ठ संभूतां यो माला वहते द्विजः ॥ १ ॥ स्कन्ध पुराण वैष्णव खं० मार्गशीर्ष माहात्म्य अ० ४ ॥ तथा मन्त्र प्राप्ति में भी कहा गया है । कि- ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः तस्याधिकारिणः सर्वे मम भक्तास्तु ते यदि ॥ पद्म पु० उ० खं० अ २२३ श्लोक २७॥ भगवान का वचन है कि—यदि मुझ में भक्ति (प्रीति) है तो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र स्त्री पुरुष सभी अधिकारी हैं । इस लिये गुरु शिष्य को वही मन्त्र दे जो स्वयं नित्य जपता हो । अन्यथा ठगपना माना जायेगा । श्री राम षडाक्षर मन्त्र के सभी स्त्री पुरुष गृहस्थ विरक्त चारो वर्ण आश्रम वाले समान अधिकारी हैं ।

मन्त्र दीक्षा देने का विधान

भगवान् की शरणागति प्राप्त करने की इच्छा से जब कोई जीव किसी महा पुरुष के निकट जाकर प्रार्थना करे, कि- हे दयामय मैं भवप्रवाह के चक्र में पड़कर अत्यन्त दुखी होगया हूं । आप कृपा करके मुझे भगवान् की शरण में भेजकर अर्थात् मन्त्र दीक्षा देकर सन्मार्ग पर चलने का शुभ उपदेश देकर हमारे हृदय का अज्ञान दूर करके ज्ञानमय दिव्य प्रकाश देकर मुझे कृतार्थ कीजिये तब सद्गुरु को चाहिये कि उस व्यक्ति को भली भांति समझा दे कि भगवत् शरणागति स्वीकार करके मन-माने ढंग से नहीं रहना होगा । श्रुति शास्त्र, संत एवं गुरु के संकेतानुसार ही जीवन बिताना पड़ेगा । जब वह सहर्ष स्वीकार करले, किसी भी प्रकार का संकोच न हो तो सुन्दर दिन, तिथि लग्न, नक्षत्र महीना और रितु का विचार करके समय निश्चित करदे । दीक्षा (मन्त्र) लेने वाले व्यक्ति को चाहिये कि- एक दिन पूर्व से व्रत करे निश्चित समय पर यथाशक्ति सामिग्री गुरु पूजन एवं भगवत् पूजन के लिये लेकर सद्गुरुओं के आश्रम पर जाये । अथवा सद्गुरु को ही अपने स्थान (घर) पर बुलालावे, शिष्य होने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह तो अपना आत्मसमर्पण गुरु को करे । तब गुरु उस चेतन (जीव) को भगवान् को अर्पण करे । मुमुक्षु साधक श्रद्धा प्रेम सहित भाव पूर्वक सद्गुरु का विधिवत पूजनकरे, गुरुको आसनदेकर बिठावे और चरणप्रक्षालन (धोकर)

चन्दन, फूल, माला, तुलसी, वस्त्र अर्पण करके धूप दीप नैवेद्य के बाद आरती करे। पुनः परिक्रमा करके यदि पुरुष हो तो प्रार्थना करके साष्टांग और यदि स्त्री हो तो पचांग प्रणाम करके निवेदन करे कि कृपासागर अब मुझ पर कृपा करके श्रीवैष्णवीय पंचसंस्कार मुझे प्रदान कीजिये ॥

उस समय सद्गुरु भाव विभोर होकर सुन्दर मण्डप के अन्दर प्रतिष्ठित या मन्दिर में भगवान के समक्ष करुणा पूर्वक निवेदन करे कि—हे अनन्त करुणा वरुणालय प्रभो ! यह आपका अंशात्मा आपको भुलाकर आपकी बलवती माया के जाल में पड़ कर बहुत कष्ट पाया। अब हे कृपा सागर यह आपकी शरण में आया है, आप कृपा करके इसकी ओर न देख कर, अपने स्वभाव के अनुसार इसे स्वीकार कर लीजिये, इसके किये हुये अनेक अपराधों को क्षमा करके, इसे अपने श्री चरणों की शरण में स्थान दीजिये। जैसे माता अबोध बालकों के अपराधों को अपराध न मान कर उस पर कोप नहीं करके अपना वात्सल्यमय प्यार प्रदान करती है। हे प्रभो ! आप पतित पावन; अधम उधारन दीनानाथ अशरणशरण, करुणा, कृपा, अनुग्रह, अनुकम्पा क्षमा, दया, वात्सल्य के सागर हैं आपका विरद है कि—सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ अर्थात् जो कोई भी जीव एक बार भी प्रपन्न होकर ऐसी याचना (प्रार्थना) करता है कि, हे प्रभो ! मैं आपका हूँ तो आप उसे सभी से अभयता प्रदान कर देते हैं। अभय पद का अर्थ है कि फिर कभी भय न हो। अर्थात् उसके समस्त पापों को नष्ट करके अपना लेते हैं। शरीरांत होने पर अपने सच्चिदानन्दघन धाम को प्राप्ति करा देते हैं, जहाँ भय का स्वप्न भी नहीं हैं। अस्तु हे करुणानिधान आप इस अबोध को अपनी शरण में स्वीकार कीजिये। और शिष्य होने वाले को भी कहे कि वह इस प्रकार प्रार्थना करे कि—

श्रवण सुजस सुनिआयउँ; प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन शरन सुखद रघुवीर ॥ रा० च० मा० सुं० कां० ४ ॥ दो० ॥ हे करुणा सागर प्रभो ! दीनानाथ दयाल। चरण शरण में राखि मोहिं, सब विधि करिय सम्हार ॥ क्षमा कृपा के रूप तुम भव निधि तारन हार। पाहि पाहि सीता रमण; आयो शरण तुम्हार ॥ जगजीवन जगनाथ हो; जगताधार परेश। त्राहि माम अशरण शरण सिय रघुवर सर्वेश ॥ प्रभु पद पद्म विसारि के, पायो दुःख अपार। अब हे परम उदार प्रभु आयो तुम्हारे द्वार ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके भगवान् को साष्टांग प्रणाम करके गुरु के संकेत से बैठ जाये। तब सद्गुरु उससे भगवान् का पूजन यथावकाश तुलसी, फूल, चन्दन धूप दीप नैवेद्य आरती इत्यादि करवाकर हवन करें। या अन्य किसी वेदज्ञ ब्राह्मण से करवावें। उसके बाद प्रथम ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगावै, फिर तुलसी की कंठी दोलर को भगवान् को अर्पण करके गले में बाँधें। तब हवन की हुई अग्नि में भगवदायुध धनुर्बाण चक्रादि को तपा कर तप्त या शीतल छाप लगावें। जिस परम्परा में चन्द्रिका मुद्रिका तथा श्री सीताराम नाम की छाप लगती हो तो उसे भी लगादें। चन्द्रिका और श्री सीताराम नाम मुद्रा को शीतल लगाने की ही विधि है। मुद्रिका को तप्त लगावे। तब भगवान् के नामों में से अपनी उपासना के अनुकूल नाम को सोचकर उसमें दास शब्द लगा कर नामकरण करे। घर वाले नाम का प्रथम अक्षर रखने का शास्त्रीय प्रमाण नहीं है, इसलिये पहले घर वाले नाम का प्रथम अक्षर रखना बिलकुल अनर्गल है। हाँ यह ठीक है कि यदि व्यक्ति का नाम घर में ही भगवान् के नामों में है, जैसे—रघुवीर प्रसाद जानकीनाथ, जगदीश, नारायण, गोपाल नरसिंह है, तब तो एक अक्षर ही क्या पूरा वही नाम ठीक है, उसी में दास या शरण लगाकर नाम संस्कार करे। किन्तु चुन्नीलाल, घुरईलाल, इत्यादि अटपट नामों के प्रथम अक्षर लेने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। विशेष उत्तम तो यही है कि पूरा नाम परिवर्तन कर दे माता वहिनों के नाम श्री जी के नाम सम्बन्धी होने चाहिये। उसके अन्त में सखी सहचरी दासी शब्द लगादे। यथा—श्री सीता सहचरी, श्री राम सखी, श्री रामप्रिया सहचरी, श्री जानकी दुलारी, श्री राम दुलारी, श्री सियाराम दुलारी ऐसे नाम धरे। यह ध्यान रहे कि—जो मातायें बिहने भगवान् को अपने पिता भाव से स्मरण करती हों, उनके नाम में दुलारी और जो पुत्र भाव से मानती हों उनके नाम श्री कौशल्या बाई, श्री सुमित्रा देवी, श्री यशोदा बाई, इत्यादि और जो भगवान् को कान्त (पति) भाव से स्मरण करती हों उनके नामों में सखी या सहचरी शब्द लगाया जाये। या दासी शब्द लगावे, जानकी दासी, रामदासी इत्यादि। तब पाँचवाँ मन्त्र संस्कार को इस प्रकार करे। कि शिष्य—

तत्प्राङ्मुखोपविष्टस्यचोत्तराभिमुखो गुरुः। शनैः शनैः शुभेकर्णे त्रिवारं श्रावयेन्मनुः॥ (नारदपञ्चरात्र)

उस विनयी पुर्वाभिमुखी अर्थात् पूर्व की ओर मुख करके बैठे हुये शिष्य को उत्तर की ओर मुख करके गुरुदेव दाहिने कान में धीरे धीरे शुद्ध स्पष्ट शब्दों में तीन बार मन्त्र सुनावें। कहीं १०८ बार भी लिखा है। दीक्षा पद्धति पृ० ७२॥

ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्तं दत्वा शतं जपेत् ॥ अष्टोतरं ततो मन्त्रं दद्या-दुदक पूर्वकम् । प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्यायाहि मुनि पुङ्गव ॥ स्वतो ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद्गुरुः । आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मिति विशेषतः ॥ कृत कृत्यस्ततः शिष्यस्तस्मै सर्वं निवेदयेत् । यच्च यावच्च यद्भक्त्या गुरवे हृष्ट-चेतनः ॥ (अगस्त सं० अ० १७ श्लो० ३६ से) पुनः वहीं पर दो श्लोक और भी २-३ के हैं ॥ यथा—उपासकस्तु श्रद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत् । स्वांचित्त वित्त कायैश्च भक्तिश्रद्धा समन्वितः ॥ यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदं मनुम् । स्वयमेव तथा चैवमिति कर्त्तव्यताक्रमः ॥

दीक्षा लेने के समय में शिष्य दोनों हाथों से सद्गुरु के चरण स्पर्श किये हो। और गुरु भगवान् का स्मरण करते हुये प्रसन्न मुख से शिष्य के मस्तक पर हाथ रख कर १०८ बार मन्त्रराज (श्री सीताराम मन्त्र) सुनावें । उस समय निकट बैठे हुये व्यक्ति प्रेम पूर्वक भगवान् का मंगलमय श्री सीताराम नाम या अपना प्रिय नाम का कीर्त्तन करते रहें । मन्त्र देते समय सद्गुरु ऐसी भावना करें कि—मेरे हृदय से ज्योतिर्मय (प्रकाश स्वरूप) ब्रह्म विद्या मेरे मुख से निकल कर शिष्य के कान के द्वारा हृदय में प्रवेश कर रही है । उसी प्रकार शिष्य भी भावना करे कि-सद्गुरु के मुख से प्रकाश स्वरूप ब्रह्म विद्या कान के द्वारा मेरे हृदय में प्रवेश कर रही है । अपने को परम धन्य अर्थात् कृतार्थ समझे । शिष्य प्रसन्नतापूर्वक अपना सर्वस्व श्रीगुरु चरणों पर न्यौछावर कर दे । शुद्धात्मा शिष्य तन मन धन से सेवा करके गुरुदेव को प्रसन्न करे । जिससे प्रसन्न होकर शिष्य को स्वयं गुरुदेव मन्त्र प्रदान करें । मन्त्र देते समय गुरु अपने तथा शिष्य के मस्तक पर वस्त्र ढाँक लेते हैं ॥ पूर्वं दद्याद्गुरुस्तस्मै मूलमन्त्रं षडक्षरम् । ततश्च चरमं दद्यादुपदेश क्रमात्सदा ॥ अर्थ—प्रथम श्रीराम तारक षडक्षर मन्त्रराज का उपदेश दे । तब द्वय मन्त्र पुनः चरमन्त्र एवं शरणागति मन्त्र का उपदेश देवे । श्री रामगायत्री श्री जानकी गायत्री श्री हनुमान जी का वैदिकमन्त्र तथा गुरु मन्त्र भी प्रदान करे । स्त्री पुरुष सभी को दाहिने कान में ही मन्त्र उपदेश करे । कितने लोग स्त्रियों को बायें कान में मन्त्र सुनाते हैं, यह ठीक नहीं है । क्यों कि पद्म पु० पाताल खं० अ० ८२ श्लो० १५ में लिखा है कि—ततो मन्त्रद्वयं तस्य दक्षकर्णे विनिर्दिशेत् । मन्त्रार्थश्च वेदत्तस्मै यथावदनु पूर्वशः ॥ और श्री रामतापनी उपनिषद् के उत्तरार्ध के २७ वें मन्त्र में भी लिखा है कि—मुमूर्षोः दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् । उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स पूतो भविता शिव ! इत्यादि दक्षिण

(दाहिने) कान में ही मन्त्र प्रदान करने का विधान मिलती है । स्त्रियों को बायें कान में मन्त्र देने का पृथक् विधान नहीं मिलता है । मन्त्र के पश्चात् मन्त्रार्थ और जीव ईश्वर के सम्बन्ध का ज्ञान भी शिष्य को करा देना चाहिये । समयाभाव में एक वर्ष के अन्दर सभी बातें सिखा देना चाहिये । क्यों कि लिखा है कि—
मन्त्रदाता न गुरुर्न च मन्त्रार्थवाचकः । मन्त्रमन्त्रार्थं यो दद्यात्सगुरुरित्यभिधीयते ॥
अर्थ—केवल मन्त्र सुना देने वाला गुरु नहीं और केवल मन्त्रार्थ बताने वाला भी पूर्ण रूपेण गुरु नहीं है । जो मन्त्र और मन्त्रार्थ, ध्यान, उपासना भगवत् सम्वन्धादि सम्पूर्ण रहस्यों का उपदेश देवे पूर्णतया गुरु वही है ॥

यदि किसी सज्जन के गुरुदेव का शरीर शीघ्र ही पूर्ण हो जाये (मृत्यु) हो जाये समयाभाव के कारण रहस्य न सीख पाने पर उसी सम्प्रदाय के मान्य सन्त जिनका स्वभाव, व्यवहार उत्तम हो, समाज की तथा अपनी भी श्रद्धा हो, ऐसे चरित्रवान महानुभावों से गुरुभाव पूर्वक साम्प्रदायक रहस्य जान ले । फिर उनको गुरु तुल्य ही माने । मन्त्रों को इस क्रम से गुरु शिष्य को देवै ॥

सर्व प्रथम श्री सीताराम जी का युगल षडक्षर मन्त्रराज तदन्दर मन्त्रद्वय पश्चात् शरणागति मन्त्र चरममन्त्र श्री सीताराम जी की युगल गायत्री श्रीहनुमानजी का वैदिक मन्त्र श्री गुरु मन्त्र देवैं । पुनः समय पाकर शीघ्र ही अर्थ पंचक, तत्त्वत्रय आकारत्रय, रहस्यत्रय और ध्यान, उपासना का सम्वन्ध इतनी वस्तुयें गुरु शिष्य को देवैं । शिष्य को भी उचित है उपर्युक्त सभी बातें प्रार्थना करके सद्गुरु से शीघ्र समझकर भगवत भजन करके अपना कल्याण संपादन करे ॥

मन्त्रद्वय--श्री रामचन्द्र चरणौ शरणौ प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः चरम मन्त्र—सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतंमम ॥ युगल गायत्री– ॐ श्री जनक नन्दिनै विद्महे श्रीराम वल्लभाये धीमहि तन्नो सीता प्रचोदयात् ॥ ॐ श्री दाशरथाय विद्महे श्री सीता वल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात् ॥ श्री सीताशरणं मम श्री रामः शरणं मम श्री हनुमान जी का वैदिक मन्त्र ॐ हं हनुमते नमः ॥ श्री गुरु मन्त्र--ॐ गुं गुरवे नमः ॥ कितने महानुभाव केवल श्रीराम षडक्षर मन्त्र ही शिष्य को देते हैं ॥ श्री जानकी जी का मन्त्र नहीं देते । परन्तु एक साथ ही दोनों मन्त्र देने का विधान है । यथा--देव्यास्तु पूर्वमेवोक्तं सह रामेण तद्भवेत् ॥ अगस्त सं० अ० ३ श्लो० २७ ॥ अर्थात्--श्री जानकी जी का मन्त्र श्री राम के साथ ही देना चाहिये । केवल श्री राम मन्त्र तो आधा ही है । श्री भरत लक्ष्मण, शत्रुहन जी के भी मन्त्र देकर श्री सीताराम मन्त्र के पूर्व ही जप

करना बता देना चाहिये ॥ मन्त्रराज का करन्यास विनियोग जप विधि बताना चाहिये। शिष्य मन्त्र प्राप्त करने के वाद ६ हजार नित्य जपे। समयाभाव में ३ हजार या ६ सौ जपे। कम से कम एक माला तो अवश्य ही नित्य जपना चाहिये। मन्त्र लेकर जप न करना मंत्रका अपराध है। अस्तु भगवान् की कृपा चाहनेवालों को ६ हजार या १२ हजार अथवा और भी अधिक से अधिक जपना चाहिये ॥ मन्त्र की महान महिमा है। यथा—मन्त्र परम लघु जासु वश विधि हरि हर सुर सर्व। महामत्त गजराज कहँ वशकर अंकुश खर्व ॥ वा० कां० २५६ दो० ॥

नोट—ध्यान रहे कि ऊपर अगस्त सं० अ० १७ का दूसरा श्लोक लिखा गया है कि—उपासकस्तु श्रद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत्। स्वचित्त वित्त कायैश्च भक्ति श्रद्धा-समन्वितः ॥ इसका भाव है कि श्रद्धावान उपासक प्रयत्न पूर्वक सद्गुरु को श्रद्धाभक्ति अपना तन मन धन अर्पण करके सेवा के द्वारा भली भाँति संतुष्ट (प्रसन्न) करे॥ परन्तु वर्तमान समय में सुनने को मिलता है कि—अमुक सन्त का अपनी शिष्या के साथ अवैधानिक (अनुचित) सम्वन्ध हो गया है। ऐसी भूल सन्त नहीं करते हैं॥ सन्तों के वेष वनाये हुये भोगलोलुपों की यह दुर्दशा है। आज भी गुरु दीक्षा देनेवाले संत वृंद सदाचरण सम्पन्न हैं। परन्तु अपवाद रूप में कहीं कोई पाखण्डी व्यक्ति संत समाज को कलंकित यदि करता है। तो जन समाज शासन के द्वारा उस व्यक्ति को दण्ड लियाये। किन्तु ऐसी धारणा न वनाले कि सभी गुरु चरित्र हीन होते हैं। शास्त्र मर्य्यादानुसार शिष्य एवं शिष्या गुरु के पुत्र एवं पुत्री होते हैं। अभाग्य वश यदि किसी को गुरु रूप में पाखण्डी व्यक्ति मिल जाये, और वह यदि उक्त श्लोक का प्रमाण देकर अनुचित आचरण का संकेत करे तो उस शिष्या को गुरु की आज्ञा नहीं मानना चाहिये। आज्ञा मानना ही महान पाप होगा। यदि वह विषय लोलुप कहे कि—राखै गुरु जो कोप विधाता गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता ॥ तो भी शिष्या को डरना नहीं चाहिये। हानि लाभ तो सद्गुरु के अप्रसन्न या प्रसन्न होने में है। जो पशुवत वुद्धि से व्यवहार करै वह गुरु नहीं गोरू (पशु) है। ऐसे गोरुओं की प्रस-न्नता या अप्रसन्नता में न तो लाभ होगा न हानि। विचारवान् शिष्या को चाहिये कि ऐसे विषय लोलुप गुरु का सम्पर्क छोड़ कर भगवत् कृपापात्र वीतराग विषय विमुख महान पुरुषों से सम्वन्ध स्थापित करके सत्संग का लाभ उठावे॥ कहीं कहीं ऐसा लिखा हुआ यदि किसीं पुस्तक में मिले, कि—यदि गुरु कामी हों तो उन्हें भगवान् श्री कृष्ण रूप समझे। यह वात वहुत ही भ्रामक एवं महा अनर्थ की मूल है। ऐसी अनर्गल मान्यतायें ही समाज के पतन का प्रधान कारण हैं। अस्तु तन मन धन अर्पण

का तात्पर्य है कि तन मन धन को अपना न मान कर गुरु का माने। ऐसा करने से तन मन धन की आशक्ति और अभिमान नहीं होगा । शिष्य एवं शिष्या गुरु को भगवत्स्वरूप मान कर पिता के समान पूज्यभाव रख कर यथावकाश श्रद्धा प्रेम पूर्व शुद्ध हृदय से सेवा करें। और सद्गुरु वात्सल्य पूर्वक शिष्य एवं शिष्यायों को पुत्र और पुत्रिवत् मान कर दुलार करते हुये सत शिक्षा दें । विषय वासना में फसाना मायावी लोगों का काम है। गुरु तो समस्त विकारों से विमुख होकर भगवत्परायण होने वाली चर्चा (दिव्य ज्ञान) के द्वारा ही शिष्य का कल्याण करते हैं। यदि कोई विषयभिलाषी ऐसा पाठ पढ़ावे कि--गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं । उनकी सभी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये तभी कल्याण होगा, गुरु आज्ञा न मानने पर नरक जाना पड़ेगा। तो उस गोरू से कहना चाहिये कि- ब्रह्म को तो लिखा है कि- निरंजनं निष्प्रतिभं निरोहं निराश्रयं निष्कलमप्रपञ्चम् । नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरन्तरं राममहं भजामि ॥ श्रीरामस्तवराज स्तोत्र श्लोक ५५ ॥ अर्थात् ब्रह्म तो निर्विषय स्वरूप है, तब आप कौन से ब्रह्म हो जो कि विषय की प्रेरणा देते हो। कोटि प्रमाण देने पर भी विषय वार्ता को बात भी नहीं सुनना चाहिये । गुरु जी नाराज होकर हमें श्राप दे देंगे, ऐसा भय भी नहीं मानना चाहिये । विषयाभिलाषियों के श्राप और आशीर्वाद से न तो कुछ बनना है न विगड़ना है। सत्शिष्यों को उचित है कि वह सद्गुरू का चरणामृत और प्रसाद श्रद्धा भक्ति पूर्वक सेवन करें। जिसके प्रभाव से शिष्य के भी हृदय में सद्गुरु के सद्गुण सद् विचार भावनायें जाग्रत हो जायेंगी। गीता में उच्छिष्ट (किसी का जूठा) भोजन पाना निषेध कहा है। वह शब्द जन साधारण के साथ व्यवहार के लिये बताया है। सद्गुरु के प्रसाद का निषेध नहीं है ।

यदि यही हठ मान ली जाये कि कोई भी व्यक्ति किसी का भी जूठा न खाये, तो पतिव्रताओं को बताया है कि पति को पवाकर पश्चात् पति का प्रसाद ग्रहण करे। इसलिये आत्म कल्याण इच्छुक शिष्यों को सद्गुरु का चरणामृत तथा प्रसाद अवश्य पाना चाहिये। गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को दिव्य ज्ञान की शिक्षा देकर उनका आत्म कल्याण करें। शिष्यों का कर्तव्य है कि गुरु के शरीर की सेवा करके उसकी रक्षा करें। अब दीक्षा लेने वाले अधिकारी बताये जाते हैं।

ब्रह्म-क्षत्र-विशः शूद्राः स्त्रियश्चैवान्त्यजास्तथा। सर्व एव प्रपद्येरन् सर्वधातारमच्युतम् ॥ बाल मूक जड़ान्धाश्च पङ्गवो बधिरास्तथा। सदाचार्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥ भरद्वाज सं० तथा दीक्षा पद्धति पृ० १६ ॥

अर्थ– ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रों के सभी स्त्री पुरुष तथा अन्त्यज (न छूने योग्य जिनका जल पीना शास्त्र निषेध है) ये सभी भगवत् भक्ति पथ के पथिक (भगवत् शरणागत) हो सकते हैं । बालक या गूँगा जड़ स्वभाव एवं अन्धा लँगड़ा और बहिरा सदाचार सम्पन्न अथवा सदाचार विहीन इनमें से जो भी सद्गुरु से सविधि दीक्षा (मन्त्र) लेकर भगवान् का भजन करेगा तो निश्चय ही भगवत्कृपा से परम पद परम गति भगवद्धाम को प्राप्त होगा ॥ अस्तु भगवत् प्राप्ति हेतु दीक्षा लेने में कुल गोत्र किया गुणों का विचार आवश्यक नहीं है । व्यक्ति श्रद्धा अश्रद्धा ही विचारणीय है ॥

वन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि । महा मोह तम पुंज; जासु वचन रविकर निकर ॥ इस सोरठा में सद्गुरु को कृपा सिन्धु नर रूप में स्वयं हरि कहा है, और गुरु वचनों को समूह सूर्य किरण बताया है जो महान् मोह रूपी अंधकार को नष्ट करके शिष्य के हृदय में दिव्य ज्ञानरूपी प्रकाश करके आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करवा देते हैं । "मोह सकल व्याधिन कर मूला । तिन ते पुनि उपजहिं बहुशूला" (बा० ३ कां० १२१ दो०) अविद्या जनित अनेक कष्ठ मोह से ही उत्पन्न होते हैं । मोह मिटते ही अज्ञान दूर हो जाता है. तब ज्ञानोदय होना स्वाभाविक है । ज्ञान प्रकाश स्वरूप होने के कारण अन्तः करण में बँधी हुई ग्रन्थि को दिखा देता है, तब जीव भगवत्कृपा का अवलम्ब लेकर भजन करने पर अनायास ही जन्म मरन से मुक्त होकर प्रभु को प्राप्त हो जाता है । अन्य साधारण जीवों की कौन कहे भगवती श्री पार्वती जी को भी मोह होने पर महान् कष्ट उठाकर मरना पड़ा । पुनः कठिन तपस्या के बाद शिव जी की प्राप्ति हो पाई । अस्तु जन्म मरन के चक्र में डालने वाला मोह ही है । वह सद्गुरु कृपा से अनायास ही दूर हो जाता है । मोह अविद्या माया का विकार है, माया का पर्यायवाची नाम अजा है ।

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोन्यः ॥ (श्वेता० ४।५) ॥

अर्थ—सत्त्व, रजस, तमस त्रिगुण धर्म वाली, अपने समान धर्मवाली त्रिविध सृष्टि की रचना करने वाली, अजा (उत्पत्ति-रहित) प्रकृति का कोई अज (अजन्मा) जीव जो अहंबुद्धि (आशक्त बुद्धि) से (अर्थात् आशक्त होकर) सेवन करता है, कोई अज (अजन्मा) जीव कुछ काल उसका भोग करके (मुमुक्षु एवं विद्वान होकर) उसे छोड़ देता है । इस श्रुति में माया को अजा और उसके सत, रज, तम त्रिगुण

एवं उनके शुक्ल लाल और काले बताये गये हैं। अजा शब्द माया तथा बकरी दोनों का द्योतक (वाचक) है। बकरियों में कुछ लाल कुछ श्वेत अधिकतर काली ही होती हैं। वैसे ही 'माया का सत्त्वगुण श्वेत रज लाल और तम काले रंग का कहा, विशेष कर माया तमोगुण प्रधान काले रंग की होती है। जैसे बकरी मैं मैं बोलती है वैसे ही माया की पहिचान भी 'मैं' की अपेक्षा से मोर' होता है। और फिर उस 'मैं' के प्रति विरोधी तैं' तथा 'मोर' के प्रति 'तोर' की सृष्टि होती है, इस प्रकार माया का पूर्ण रूप 'मैं' 'मोर' 'तैं' 'तोर' सम्पन्न हो जाता है। यथा—मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया॥ मा० रा० अ० कां० १५ दो०॥ गीता प्रेस कल्याण के उपनिषद् अंक में अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां……" इस श्रुति की व्याख्या पर निम्नलिखित नोट दिया है, जो इस प्रसंग का पोषक है। वह यह है कि—सांख्यमतावलम्बियों ने इस मन्त्र को सांख्य शास्त्र का बीज माना है। और इसी के आधार पर उक्त दर्शन को श्रुति सम्मत सिद्ध किया है। सांख्यकारिका के प्रसिद्ध टीकाकार तथा अन्य दर्शनों के व्याख्याता स्वनाम धन्य श्री वाचस्पति मिश्र ने अपने सांख्य कौमुदी नामक टीका के आरम्भ में इसी को कुछ परिवर्तन के साथ मंगलाचरण के रूप में उद्धृत करते हुये इसमें वर्णित प्रकृति की वन्दना की है। यहाँ काव्यमयी भाषा में प्रकृति को एक तिरंगी बकरी के रूप में चित्रित किया गया है। जो बद्धजीव रूप बकरे के संयोग से अपनी ही जैसी तिरंगी-त्रिगुणमयी संतान उत्पन्न करती है॥

और यह अजा (बकरी) रूपी माया पंच संस्कार धारण करने वाले गुरु देव से डरती है। सद्गुरु अपने शिष्यों की इन्हीं अपने अंग में धारण करने वाले पंच संस्कारों के द्वारा रक्षा करते हैं। माया के शब्द स्पर्श इत्यादि ही जीव को भव कूप में डालते हैं। यथा--पाँचइ पाँच परस रस शब्द गन्ध अरु रूप। इनकर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव कूप॥ वि० प० २०३॥ श्रीगुरुदेव जी इन पंचसंस्कारों से माया द्वारा किये उपद्रवों से इस प्रकार रक्षा करते हैं। कि-शब्द ग्रहण की इन्द्री-कान है, शब्द का विषय कान के द्वारा ही हृदय में प्रवेश करके विकार उत्पन्न करता है। इसीलिये उससे रक्षार्थ कान को शुद्ध करने के लिये कान में ही मन्त्र दिया जाता है। और उसकी कर्मेन्द्रिय वाक् (वाणी) से उत्पन्न मन्त्र का जप किया जाता है। स्पर्श विषय वाले वायुतत्त्व की कर्मेन्द्रिय हाथ है। उसके रक्षार्थ भगवदायुध धनुष बाण आदि की छाप (चिन्ह) हाथों के मूल बाहुओं पर दिये जाते हैं। रूप का केन्द्र स्थल ललाट (मस्तक) है। क्यों कि रूप देखने में प्रथम मस्तक पर ही दृष्टि जाती है। इसलिये उस से रक्षणार्थ मस्तक पर ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाया

जाता है । सर्वांग में द्वादश तिलक किया जाता है । क्यों कि सर्वांग में रूप का ही विषय है । रस विषय ग्रहण करने की इन्द्रिय रसना (जीभ) है । उससे ही अनेक पदार्थों का स्वाद मिलता है । वह पदार्थ कण्ठ में होकर पेट में जाते हैं । इसलिये कण्ठ में तुलसी की माला (कंठो) बाँधी जाती है । नाम का सम्बन्ध पृथ्वी तत्त्व के निर्मित नाना शरीरों से रहताहै, व्यक्ति किसी का पुत्र किसी का पिता किसीका पति, मित्र इस रीति से पृथ्वी पर से सम्बन्धित रहता है । इस बन्धन से मुक्त होने के लिये भगवत्सम्बन्धी नाम-संस्कार किया जाता है । इससे जगत के नाना प्रकार के सम्बन्धी न रह कर भगवान् का दास या शरण कहा जाता है । यह पृथ्वी तत्त्व सम्बन्धी जगत वासना रूपी गन्ध विषय से रक्षा का उपाय है । इस प्रकार पंच संस्कारों द्वारा जीव पंच विषय से बच कर भगवत् भजन करके देहावसान होने पर भगवान् को प्राप्त होता है । इसलिये भगवत् प्राप्ति करने की इच्छा करने वाले सभी वर्णाश्रम के स्त्री पुरुषों को सद्गुरु से पंच संस्कार प्राप्त करके भगवत् भजन परायण होकर भगवत् प्राप्ति करना चाहिये । उपर्युक्त विषय प्रपत्ति रहस्य के पृ० २६० से २६५ तक संक्षित रूप में लिया गया है ॥

भगवत् शरणागति की महिमा और शास्त्रीय प्रमाण--

यद्यपि शास्त्रों में महर्षियों ने कर्म ज्ञान उपासना अष्टांग योग इत्यादि अनेक साधनों के द्वारा जीव की संसार चक्र (जन्म मरण) से मुक्ति (छुटकारा) और भगवत् प्राप्ति बताई है । तथापि उन सभी साधनों की साधना करना दुर्धर्ष कार्य है और भगवान श्री हरि की शरणागति अत्यन्त ही सुगम मार्ग है । इस पथ में चलने पर किसी भी प्रकार का काँटा कुश या कंकड़ नहीं है, अर्थात किसी भी प्रकार का विघ्न बाधा नहीं है । केवल एकमात्र अपने आराध्यदेव पर विश्वास करने भर की आवश्यकता है । शरणागत भक्त को सर्वदा दृढ़ता पूर्वक ऐसी भावना रखना चाहिये कि—हमारे प्राणाधार परम प्रियतम प्रभु सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, सर्व समर्थ तथा भक्तवत्सल हैं । अपने आश्रितों की रक्षा करना उन करुणा वरुणालय का सहज स्वभाव है । वे उदार शिरोमणि सर्वज्ञ होने के कारण हमारी आवश्यकताओं को विना निवेदन किये ही भली भाँति जानते हैं । सर्व व्यापक होने के कारण मेरी योग क्षेम अर्थात् आवश्यक अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति करा देना एवं प्राप्त पदार्थों की रक्षा करना, इस कार्य को करने के लिये प्रभु को आना जाना नहीं पड़ेगा । सर्व समर्थ होने के कारण मेरे दोष दुर्गुण दुख अनेक जन्मों के अपराधों (पापों) को अनायास ही दूर करके अपनी कृपा दृष्टि के द्वारा भली भाँति मेरा सम्हार करेंगे । भक्तवत्सल होने कारण हमारे हृदयेश प्रभु हमें कभी दीन दुखी देख ही नहीं सकते हैं । जैसे माता अबोध शिशु का मुख मलीन देखकर चिंतित होकर बालक के मुख मलीनता

के कारण को दूर करने में अविलम्ब सचेष्ट होकर उसे प्रसन्न मुख देख कर ही सुख पाती हैं। उसी प्रकार हमारे जीवन धन सर्वस्व प्रभु सब प्रकार से हमें प्रसन्न करके ही सुख मानेगे। तभी आश्रितों का मन विश्वासपूर्वक भगवान् में लगा रहेगा, अन्यथा भटक जाना स्वाभाविक है। इसलिये कल्याण चाहने वाले सज्जनों को चाहिये कि अविलम्ब सद्गुरु के द्वारा भगवत् शरणागति स्वीकार करके भगवद्भजन करें। शरणागति शब्द का अर्थ देखिये ॥

शरणं गृहरक्षित्रोः (अमर कोष) तथा–उपायेगृहरक्षित्रोः शब्द शरणमित्य "यम्। वर्तते साम्प्रतं चैष उपायार्थैकवाचकः ॥

प्रपति रहस्य पृ० १ से (लक्ष्मी तन्त्र) उपाय, गृह और रक्षक ये शरण शब्द के अर्थ होते हैं। और भी पढ़िये कि—"गम्लृ–गतो पद–गताविति द्वयोरपि धात्वो-रेकार्थकत्वाच्च। शरणागत शब्द प्रपन्नशब्दयोरेकार्थकत्वावगमात ॥" (श्री हरिदास जी कृत रहस्यत्रय) अर्थात् 'गम्लृ गतौ और 'पदगतौ' इन दोनों धातुओं का एक अर्थ होने से शरणागत शब्द और प्रपन्न शब्द का एक ही अर्थ होता है। शरणागत शब्द के पर्याय शब्द और भी हैं, यथा—न्यास, आत्मसमर्पण, आत्मनिवेदन, और आत्मभरण एवं 'ऋ–गतौ' इस धातु से निष्पन्न, "भरण" शब्द आदि शरणागति के नाम हैं। तथा—प्रपन्न, शरणागत, भागवत, वैष्णव और आश्रित आदि शरणागत के पर्याय शब्द हैं। शरण का अर्थ घर भी होता है। अतः शरण–आगत शब्द का अर्थ—'अपने घर पर प्राप्त (आया)' एवं 'अपने वासस्थान पर प्राप्त'–यह होता है। यही अर्थ कपोत प्रसंग से सिद्ध होता है। यथा—"श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः। अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ॥" (बाल्मी० रा० ६।१८।२४) अर्थात् श्री राम जी ने कहा है कि—सुना जाता है कि एक वृक्ष पर एक कबूतर रहता था। उसके निवास स्थान उस वृक्ष के पास एक शरणागत उसका शत्रु रूप बहेलिया आया। उस कबूतर ने उस बहेलिया का विधिवत सत्कार किया था। और अपना मांस उसे भोजन करवाया। प्रपति रहस्य पृ० २ से

पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी घर के द्वार पर पड़ने को शरणागति के भाव पर कहा है। यथा—"द्वार हौं भोर को ही आज" (वि० प० २१६) "द्वार परो गुन गावौं" (वि० प० २२२) "ताते हौं बार–बार देव द्वार परि पुकार करत" (वि० प० १३४) तथा तुलसीदास निज भजन द्वार प्रभु दीजै रहन परो" (वि० प० ६१) इत्यादि ॥ जब कि एक पक्षी भी शरणागत को अपना मांस खिला कर सत्कार कर सकता है, तब भगवान् श्री हरि की बात क्या कही जाये।

श्री राम जी की तो प्रतिज्ञा ही है कि—"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥" (वाल्मी० ६।१८ ३३) अर्थात् जो मेरी शरण में आकर एकबार भी ऐसी याचना करता है कि—मैं आपका हूँ । इस प्रकार की प्रार्थना करने वाले सभी प्राणियों को मैं सभी से अभय कर देता हूँ । यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ अस्तु प्रभु की इस प्रतिज्ञा को जान समझ कर मानव मात्र को भगवत् शरणागति स्वीकार करनी चाहिये ॥

शरणागति के भेद--

जैसे ज्ञान में सात भूमिकायें हैं, योग के आठ अंग प्रसिद्ध हैं । और भक्ति में भी नवधा के नौ भेद एवं प्रेमा-परा आदि की संज्ञा वाले भेद होते हैं । वैसे ही इस शरणागति के भी छै भेद होते हैं । यथा—

आनुकूलस्य सङ्कल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम् । रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥ आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥"

(नारद पञ्चरात्र) अर्थ—भगवान् की अनुकूलता के संकल्प करना, भगवान् के प्रतिकूला बढ़ाने वाले जो देश, काल, कर्म और स्वभाव आदि हैं, उनका तथा हिंसादिक दोषों को सर्वथा त्याग करना, भगवान् मुझ शरणागत की रक्षा अवश्य ही करेंगे, इस प्रकार का **दृढ़** विश्वास धारण करना, अपनी रक्षा के लिये भगवान् को वरण करना, शरीर समेत आत्मा तथा शरीर सम्बन्धी पदार्थों को भगवान् के लिये समर्पण करना, और अपने में दीनता का अनुसंधान करना, ये छै भेद शरणागति के हैं ।

१- अनुकूल सङ्कल्प--

नाम रूप लीला सुरति, धामवास सत्संग । स्वाति सलिल श्रीराम मन, चातक प्रीति अभंग ॥ नाम रूप लीला धाम का निरन्तर अनुभव करने से हृदय की वृत्ति स्वामी श्री राम जी के अनुकूल हो जाती है । तब प्रभु के अनुकूल ही संकल्प होने लगते हैं । कीट भृंग न्याय से भगवान् के गुण रूप लीला का मनन करते करते भक्त का मन भगवान् का लीला केन्द्र बन जाता है ॥ गोस्वामी जी ने कहा है कि—जानकी जीवन की बलि जैहों । चितकहै राम सियापद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहों ॥ (वि० प० १०४) इस पूरे पद में भगवान् की अनुकूलता का ही वर्णन है ॥

२- प्रातिकूलस्य वर्जनम्--

भगवत्शरणागति के बाधक सभी देश, काल' वस्तु एवं व्यक्तियों का सर्वथा त्याग कर देना, चाहे अपने कितने भी प्रिय क्यों न हों । श्री विभीषण जी ने रावण

को समझाया, जब उसने इनकी बात न मान कर अनादर किया तो श्री विभीषण जी ने ही लंका तथा संपूर्ण परिवार का मोह त्याग कर भगवान् श्री राम जी की शरणागति प्राप्त की ॥ गोस्वामी जी ने भी कहा है कि—जाके प्रिय न राम वैदेही । तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बन्धु भरत महतारी । बलि गुरु तज्यो कन्त वृज बनि-तन मैं मुद मंगलकारी ॥ (वि० प० १७४) जरौ जो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाय । सन्मुख होत जो रामपद, करै न सहस सहाय ॥ रा० च० मा० अयो० कां० १८५ ॥ और सुन्दर कां० के ३८ वें दोहे में श्री विभीषण जी ने रावण से कहा कि—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ । सब परिहरि रघुवीरहिं, भजहु भजहिं जेहि सन्त ॥

३– रक्षिष्यतीति विश्वासः—

हमारे आराध्यदेव श्री राम जी ने बड़े बड़े आर्त अनाथों की रक्षा की है । अतः मेरी भी रक्षा अवश्य ही करेंगे, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना शरणागति का तीसरा भेद है । लंकापति, कपिराज, गज, द्रोपदि, ध्रुव, प्रहलाद । रक्षा करि इन सबनि की, प्रभु दीन्हों अहलाद ॥

४– गोप्तृत्व वरणम्—

यद्यपि भगवान् सर्वज्ञ तथा सर्वान्तरयामी हैं, तथापि उन परम प्रभु का यह नियम है कि—जब शरणागत व्यक्ति प्रभु से अपनी रक्षार्थ प्रार्थना करे कि—हे नाथ ! मैं असमर्थ दास हूँ । आप मेरी रक्षा कीजिये । मुझे अमुक दुख है, आप कृपा करके इस दुख से मेरा उद्धार कीजिये । यथा—

संसारसागरान्नाथौ, पुत्र-मित्र-गृहाकुलात् । गोप्तारौ मे दयासिन्धू, प्रपन्न भयभंजनम् ॥ इत्यनेन विषय वैराग्यमुक्तम्, संसारसागरात्गोप्तारावित्यनेन गोप्तृत्ववरणेन संसारान्मुक्तिर्याचिताः प्रपन्न भयभंजनावित्यनेनाभयप्रदानत्वं ज्ञापितम् ॥ (रहस्यत्रय श्री हरिदास भाष्य)

इसमें "संसार सागर से पार होने के लिये और विषयों से उत्तम वैराग्य प्रदान करने के लिये तथा अभय प्रदानत्व एवं मुक्ति के लिये स्पष्ट निवेदन है । श्री गोस्वामी जी ने भी कहा है, यथा—"दास तुलसी सदय हृदय रघुवंश मनि, पाहि कहे काहि कीन्हों न तारन-तरन ।" (गी० सुं० ४३) पुनः– तेउ सुनि शरण सामुहे आये । सकृत प्रणाम किये अपनाये ॥ रा० रा० अयो० कां० २९९ नो० ॥ और शरणगये प्रभु काहु न त्यागा । विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥ श्रीविभीषण शरणागति

के समम प्रभु ने स्वयं भी कहा है कि—कोटि विप्रबध लागें जाहू । आये शरण तजौं नहिं ताहू ॥ सु॰ कां॰ ४४ दो॰ ॥ प्रभु के इन वचनों पर दृढ़ विश्वास करके कि कृपासागर प्रभु हमारी रक्षा अवश्य ही करेंगे, शरणागति स्वीकार कराने की प्रार्थना करनी चाहिये ॥

५– आत्म–निक्षेप––

अपने परम सुहृद सर्व समर्थ स्वामी श्री राम जी को अपना शरीर एवं इसके सम्बन्ध की सम्पत्ति का अर्पण करना पाँचवीं शरणागति है । यथा—'ममनाथ ! यदस्ति योऽस्म्हं सकलं तद्धि तथैव माधवः ! । नियतस्वमिति प्रबुद्धधीरथवा किन्तु समर्पयामिते ! ॥" (आलमन्दार स्तोत्र ५६) अर्थात् हे माधव ! जो कुछ मेरा कहा जाता है, और जो कुछ मैं हूँ. वह सब तो आपका ही है, मैं दृढ बुद्धि से आपका ही नियत [निश्चित] धन हूँ फिर और मैं आपको क्या सौपूँ । "योऽहं ममास्ति यत्किंचिदिहलोके परत्र च । सत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम् ॥" नारद पांचरात्र ॥ अर्थ—जो मैं हूँ, तथा इसलोक और परलोक में जो कुछ मेरा है, उन सबका मैं आपके श्रीचरणों में समर्पण करता हूँ, और जागतिक सभी सम्बन्धों से भगवान् को ही अपना सम्बन्धी मानकर शरीर रखना भी आत्म-समर्पण है, यथा—पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रिय-सुहृत्त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरसि गतिश्चासि जगताम् । त्वदीयस्त्वद्भृत्यस्तव परिजनस्त्वद्गतिरहं, प्रपन्नश्चैवं सत्यहमपि तथैवास्मि हि भरः"॥ [आलमन्दार स्तोत्र ६३] अर्थात् हे करुणानिधान ! आपही जगत के पिता माता, स्त्री, पुत्र, प्रिय मित्र, प्रिय सुहृद् गुरु और आश्रय हैं । मैं भी आपका ही सेवक कुटुम्ब आश्रित और शरणागत हूँ । ऐसा होने से मैं आपके द्वारा पोष्य हूँ । यथा—गुरुपितु मातु न जानौं काहू । कहौं सुभाउ नाथ पति आहू ॥ जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतिति निगम निजगाई ॥ मेरे सबै एक तुम स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तरयामी ॥ रा॰ च॰ मा॰ अयो॰ कां० ७२ दो॰ ॥

६– कार्पण्य—

पाँचवी शरणागति में जो आत्म समर्पण किया गया है, उस पर यह भाव न आ जाये कि- मैंने प्रभु को कुछ विशेष वस्तु दी है, इसलिये अभिमान न होने के लिये ही कार्पण्यता का प्रयोजन है, कि- इस दीन हीन सभी गुण रहित मलीन शरीर को समर्पण कर इसका उद्धार चाहता हूँ । कृपया इसको स्वीकार कीजिये । यथा––

"अहमस्म्यपराधानामालस्त्यक्तसाधनः । अगतिश्च ततो नाथो भवन्तमेव

मे गतिः ॥ "अहमस्म्यपराधानामालय इत्यनेन शरणागतेः स्वरूपमुक्तम् । तदुक्तमभियुक्तैः- स्वापराधोक्ति पूर्वं यत्स्वात्मसात्त्वस्य प्राथनम् । स्वरूपं शरणापत्तिरित्युक्तं सात्वतैः खलु" ॥ (रहस्यत्रय श्री हरिदास भाष्यम्)

अर्थ—हे श्री सीताराम जी ! मैं साधन रहित और पापों का स्थान हूँ । इससे गति शून्य हूँ । आप दोनों ही हमारी गति हों अर्थात् मुझे आश्रय दें । मैं अपराधों का स्थान हूँ । इस वचन से शरणागति का स्वरूप कहा गया है । तत्त्वज्ञ पुरुषों ने इसी को शरणागति कहा है । अपने अपराधों को कह कर आत्म समर्पण करना और "मुझे अपने आधीन कीजिये" ऐसी प्रार्थना को शरणागति का स्वरूप कहा जाता है । श्री विभीषण जी ने शरण आते समय कहा था कि नाथ दशानन कर मैं भ्राता । निश्चर वंश जनम सुर त्राता ॥ सहज पाप प्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥ श्रवण सुजस सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भवभीर । त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुवीर ॥ तब—'दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज विशाल गहि हृदय लगावा ॥ (सु० कां० ४५-४६) और श्री गोस्वामी जी ने भी वि० प० ६५-६६ तथा १५० पद में अपनी कार्पण्यता कही है । अन्यान्य महात्पुरुषों ने भी कहा है कि—"अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे । अगति शरणागतं हरे ! कृपया केवलमात्मसात्कुरु" ॥ (आलमन्दर स्तोत्र ५१) अर्थ—मैं हजारों अपराधों का स्थान हूँ, और भयंकर भव सागर के उदर में पड़ा हूँ । अतः हे हरे ! मुझ आश्रय रहित शरणागत को केवल अपनी कृपा से अपनाइये ॥ शरणागति के छै भेदों का संकेत किया गया है । विशेष जिज्ञासुओं को श्री वैष्णव मताब्जभास्कर और प्रपत्तिरहस्य गतिवोध दीक्षा पद्धति इत्यादि पुस्तकें देखना चाहिये ॥

प्रपत्ति में पुरुषकारत्व--श्री राम जी के हृदय में कृपा गुण का उद्दीपन कर जीवों के दोष क्षमा कराकर प्रभु श्री राम जी से उनका सम्बन्ध दृढ करने से श्रीजानकी जी पुरुषकार स्वरूप कही जाती हैं । श्री राम जी में उपायत्व और श्री जानकी जी में पुरुषकारत्व (घटकत्व) असाधारण गुण हैं । नोट- जीवों पर वात्सल्याधिक्य से श्री जानकी जी पुरुषकारत्व करती हैं । और फिर श्री राम जी के साथ उपायोपेय भी रहती हैं । आचार्यवर जगतगुरु अनन्त श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने लिखा है कि--

"सर्वाधीशेश्वरप्राप्तिर्हेतुस्तत्राभिधीयते । सीतापुरुषकारार्थं श्रीत्यनेन पदेन तु ॥ मता पुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते ॥" (वै० म० भास्कर)

अर्थ--मन्त्रद्वय के प्रथम वाक्य में स्थित श्री पद से समस्त पदार्थों के स्वामी भगवान् श्री राम जी की प्राप्ति के कारण रूपी, पुरुषकार-प्रयोजन वाली श्री सीता जीका वर्णन किया गया है। श्रीमत् इसपदमें श्रीपद के आगे जो मतुप् प्रत्ययका मत् पद है, उससे पुरुषकाररूपी श्री सीता जी का उससे आगे "रामचन्द्र" पद वाच्य स्वामी श्री राम जी से नित्य सम्बन्ध कहा गया है। ऐसा ही अन्यत्र भी प्रमाण है। यथा--"अनन्या राघवेणा हं भास्करेण प्रभा यथा" (वाल्मी० ५।२१।१५) ये श्री जानकी जी के वचन हैं। इसी प्रकार श्री राम जी ने भी कहा है कि--"अनन्या हि मया सीता भास्करेण यथा प्रभा" (वा० रा० ।) उक्त दोनों श्लोकों में परस्पर श्री सीताराम जी का अखण्ड एकरस नित्य सम्बन्ध कहा गया है। श्री जानकी जी के पुरुषकारत्व (घटयितृत्व) की रीति का अभियुक्तों ने इस प्रकार वर्णन किया है। यथा -'पत्येव त्वत्प्रेयान जननि परिपूर्णागसि जने हित श्रोतो वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधीः। किमे तन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितैरुपायै विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः" । (श्री गुणरत्नकोष श्री भट्टार्य स्वामी कृत) अर्थ--हे माता ! परिपूर्ण पापी (महान पापी) जीव के विषय में हित करने की वृत्ति से पिता के समान आपके स्वामी जब कभी कुपित होते हैं। उस समय आप 'यह क्या हुआ" इस जगत में अपराध रहित कौन !' एवमादि उचित उपायों से जीव के अपराधों को प्रभु के चित्त से भुलाकर इसे अपनाती हैं। इस कारण से आप हम लोगों की माता होती हैं॥ अपना ही अपराध करने वाले जयन्त की शरणागति के प्रसंग में कहा गया है कि--

"पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसंतदा। तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी॥ प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम्। त्राहि त्राहीत भर्त्तारमुवाच दयया विभुम्॥ तमुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूपसागरः। ररक्षरामो गुणवान्वायसं दययैक्षत" ॥ पद्मपुराण

अर्थ--श्री जानकी जी ने आगे पड़े हुये काक (जयन्त) के शिर को श्री राम जी के चरणों में लगा दिया। और प्राणों से भयभीत कौए को देख कर दया करके अपने स्वामी से कहा कि--इसकी रक्षा कीजिये। तब कृपा निधान परम प्रभु श्री राम जी ने उस कौए को अपने हाथ से उठाकर दया दृष्टि की वृष्टि से रक्षा की। यद्यपि जयन्त ने श्री जानकी जी का ही अपराध किया था, उसी कारण श्री राम जी ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भी कर दिया था। तथापि श्री जानकी जी ने अपने

स्वामी को समझाकर उसकी रक्षा करवाई है। श्री जानकी जी को अनुकूल करने के लिये किसी साधन की भी आवश्यकता नहीं है। माता को अपनी सन्तान पर स्वाभाविक दया होती है। वैसे ही श्री जानकी जी भी अहेतुकी दया करके सभी जीवों की रक्षा करने वाली हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने मुमुक्षु के प्रति दो क्रियायें रख दी हैं। कि—"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजः।" सभी उपायों को त्याग करना और उनकी शरण होना। इन दो क्रियायों को मुमुक्ष करे, तव उनकी कृपा उस पर होगी। श्रीराम जी की प्रतिज्ञा में भी "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते"। इसके अनुसार दीन होकर मैं आपका हूँ, ऐसा कहे यह एक क्रिया रख दी गई है। परन्तु श्री जानकी जी ने किसी भी क्रिया की अपेक्षा नहीं राखी है। लंका में जब राक्षसियों ने अपने कुकृत्य से डर कर यह निश्चित किया कि—"प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा। अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्॥" अर्थ—श्री जानकी जी तो केवल प्रणाम एवं नम्रता से ही प्रसन्न हो जाती हैं। और ये ही राक्षसियों की महान् भय से रक्षा कर सकती हैं। वहाँ उन राक्षसियों के विना प्रणाम या प्रार्थना किये ही श्री जानकी जी ने कह दिया कि——"भवेवं शरणं तु वः॥" (वाल्मी० रा० ५ २७।३६,३७) अर्थात् मैं तुम सवकी रक्षा करूँगी। फिर रावण वध के पश्चात् जव श्रीराम विजय का समाचार सुना कर श्री जानकी जी को प्रसन्न जानकर श्री हनुमान जी ने यह निवेदन किया कि—इन राक्षसियों ने आपको नाना प्रकार जे वहुत दुख दिया है। अतएव मैं इनका चित्रवध करूँगा। इस पर श्री जानकी जी ने श्री हनुमान जी को समझाते हुये कहा कि—" न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयोरक्षितव्यस्तु संतश्चारित्र भूषणः॥ पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥" (वा० रा० ६।११३।४२,४३) अर्थ—पापियों के पापों की ओर धर्मात्मा पुरुष ध्यान नहीं देते, इस मर्यादा की रक्षा करनी चाहिये। क्यों कि सच्चरित्र ही सन्तों का भूषण है, पापी हो, पुण्यात्मा हो और चाहे वह वध करने के योग्य क्यों न हो, सज्जनों को उस पर दया ही करनी चाहिये। क्यों कि ऐसा कोई भी नहीं है जो अपराध न करता हो। श्री जानकी जी के इस निर्हेतु वात्सल्य स्वभाव पर मुग्ध होकर श्री भट्टार्य स्वामी ने कहा कि—

"मातर्मैथिली! राक्षसीस्त्वयि तदैवाद्रापराधास्त्वया। रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्यगोष्ठी कृता॥ काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः। सानः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी"॥ (श्री गुण रत्न कोष)

हे माता ! हे मैथिली जी ! तात्कालिक अपराध करने वाली राक्षसियों की श्रीहनुमानजी से रक्षा करने वाली आपकी कृपा ने "मैं आपकी शरण हूँ" ऐसा वचन कहकर प्रणाम करने वाले शरणागत जयन्त और विभीषण की रक्षा करने वाले श्रीरामजी की कृपा को अत्यन्त लघु सिद्ध कर दिया। वह आपकी निर्हेतुकी कृपा अत्यन्त पापी हम जैसे आश्रितों को सुखी करे। अपना ही घोर अपराधी जयन्त की रक्षा श्रीरामजी से और महान् दुखदाई—राक्षसियों की रक्षा श्रीहनुमानजी से करवाई है। जब इनके लिये भी आपके हृदय में इतनी दया थी, जो कि तुरन्त वध कर देने योग्य थे। तब और प्राणियों के प्रति तो कहना ही क्या है ! अतः श्रीजानकी जो की कृपा अत्यन्त सुलभ है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीजानकीजी को पुरुषकारत्व के लिए वरण किया है। यथा—कबहुँक अम्ब अवसर पाइ। मेरिऔसुधि द्याइबी कछु करुण कथा चलाइ॥ हे माँ मैं तो—दीन, सबअंगहीन, छीन, मलीन; अघी अघाइ। नाम लै भरैं उदर एक प्रभु-दासी दास कहाइ॥ बूझिहैं सो है कौन कहिबी नाम दशा जनाइ। सुनतरामकृपालु के मेरी बिगरियौ बनि जाइ। जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ। तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुण गण गाइ॥ (वि० प० ४१) और ४२ पद भी द्रष्टव्य है॥ और श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में प्रथम श्रीलक्ष्मणजी की शरणागति है, उन्होंने श्रीजानकीजी के पुरुषकारत्व का मर्म प्रगट किया है। यथा—स भ्रातुश्चरणौ गाढ़ं निपीड्य रघुनन्दनः 'सीतामुवाचातिशयां राघवं च महाव्रतम्॥" (वा० रा० २। ३१-२। अर्थात् श्रीलक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के दोनों चरणों को बड़े जोर से कसकर पकड़लिया और अत्यन्त यशस्वनी श्रीसीताजी तथा महाव्रतधारी श्रीरामजी से कहा। यहां "सीतामुवाचातिशयाम्" इस पद को प्रथम देकर महर्षि ने प्रगट कर दिया है कि अनन्त जीवों को भगवत्सन्मुख कराके यश प्राप्त किये हुई श्रीसीताजी से कहा। उन्हें अपनी प्रपत्ति [शरणागति] में पुरुषकार रूप में वरण किया उनकी सहायता प्राप्त करके तब 'राघवं च महाव्रतम्। इस पद के अनुसार श्रीलक्ष्मणजी ने श्रीरामजी की शरणागति की है॥

नोट—शरणागत चेतन भगवत्परतन्त्र है। यदि भूल से अपने को स्वतन्त्र मान ले, और शरणागति के विपरीत अन्य देवान्तरों या साधनों के उपायान्तरों के फल की भावना हो जाये तो शरणागति खण्डित हो जाती है। उसके प्रायश्चित रूप में भी पुनः भगवत्शरणागति ही करे। अन्य उपायों से शरणागति की स्वीकृति नहीं होती है। केवल पश्चात्ताप पूर्वक अपनी भूल मानकर भगवत्शरणागति की ही याचना करे। एक बात का और भी ध्यान रखना अनिवार्य है, वह यह कि—

संसार से मुक्ति एकमात्र भगवत्शरणागति स्वीकार करने पर ही होती है। किसी भी देवी या देवता की शरणागति होने से मुक्ति का लाभ होना असम्भव है। हां लोक वैभव प्रतिष्ठा यश, कीर्ति या स्वर्ग का साम्राज्य तक मिल सकता है मुक्ति नहीं। अस्तु मुक्ति की कामना वाले साधकों को भगवत्शरणागति ही करनी चाहिए। यद्यपि सनातनधर्म में देवी, दुर्गा, गणेश, सूर्य, शिव ब्रह्मा इन्द्रादि अनेक देवताओं की पूजा शास्त्र सम्मत होती आरही है। होनी भी चाहिए। जिसको लोक वैभव ही चाहिये शारीरिक सुखस्वाद की ही आवश्यकता है, वह भगवतआराधन न भी करके देवाराधन ही करे तो भी सभी मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं। किन्तु देवाराधन के द्वारा मुक्ति प्राप्ति करने का स्वप्न देखना केवल भ्रम मात्र है। और भगवान् श्रीहरिका भजन करने पर लोक वैभव तथा शरीरान्त होने पर भगवद्धाम की प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्र प्रमाण है। यथा—"श्रीरामरामेति ये जना जपन्ति च सर्वदा। तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः॥ (श्रीराम स्तवराज स्तोत्र श्लोक ६) इसलिए जन्म मरण के चक्र से छूटने के लिए एकमात्र भगवत्शरणागति ही उपयुक्त है॥

ध्यान रहे कि भगवत्मन्त्र व्यापक होते हैं, अन्य देवी देवताओं के मन्त्र व्यापक नहीं होते। क्योंकि भगवान् श्रीहरि सर्वत्र व्यापक हैं। व्यापक मन्त्र ही मुक्ति-प्रद होते हैं, देवी देवताओं के अव्यापक मन्त्रों से मुक्ति का लाभ नहीं होपाता। अस्तु शरणागति तो भगवान् श्रीहरि की ही उभय वैभव प्रदाता है। अन्य की नहीं॥ देवता तो जीव हैं, जीव को मुक्ति प्रदान का अधिकार नहीं है। चेतनों को संसार चक्र से मुक्त करना ब्रह्म का कार्य है, देवताओं का नहीं। यथा—

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इहचारव्यापकानान्तुमध्ये। ऽतिश्रेष्ठों व्यापकः स श्रुति मुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः॥ नित्यानामाश्रयोऽयं परित उरुशुभो राममन्त्र प्रधानः। प्रायश्च प्रापकोऽपि प्रचुरतर गुण ज्ञान शक्त्यादिकानाम्॥ (श्रीवैष्णव मताब्ज भास्करः ११)

अर्थ—मन्त्र दो प्रकार के होते है। व्यापक और अव्यापक। भगवत् (ब्रह्म) के मन्त्र व्यापक और देवी देवताओं के मन्त्र अव्यापक होते हैं। क्योंकि ईश्वर ही सर्व व्यापक है। देवता नहीं। अव्यापक मन्त्र प्रवृत्तात्मक और व्यापक मन्त्र निवृत्तात्मक हैं। 'सर्व विश्वात्मकं विष्णु सर्वलोकैक कारणम्। ३४ (नारदीय पुराण

पूर्वखण्ड अ० ३२) और "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । गीता अ० १८ का ६१॥" पुनः—"सर्वभूतस्थितो यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । गीता अ० ६ का ३१" विशेष जानना हो तो बलिदान निषेध पुस्तक के पृ० ६ पंक्ति १२ से और देवी बलि पाखण्ड पृ० ४८-४६ देखिए । जीव का उद्धार जीव के मन्त्र जपने से न होगा । भगवत्मन्त्र जप से कल्याण होगा । राम ब्रह्म व्यापक जगजाना । परमानन्द परेश पुराना ॥ मा० रा० बा० कां० ११६ दो० ॥ और बारक राम कहत जग जेऊ । होत तरन तारन नर तेऊ ॥ और भी—जासुनाम सुमिरत एकबारा । उतरहि नर भवसिंधु अपारा ॥ अयो० का० १०१ दो० ॥ व्यापक मन्त्रों का भी व्यापक वेद एवं मुनि सम्मत श्रेष्टजनों से गृहीत नित्य और प्रचुर तर गुण ज्ञान एवं शक्त्यादिका आश्रय एवं प्रापक परम शुभ सभी व्यापक मन्त्रों से प्रधान जो षडाक्षर श्रीराम मन्त्र है, यह आचार्य (गुरु) से प्राप्त करने योग्य है । भगवत्मन्त्र गौण और प्रधान दो प्रकार के होते हैं । भगवान् के २४ अवतार हैं, उनमें श्रीरामजी श्रीकृष्ण दो अवतारों के ही मन्त्र प्रधान हैं । अन्य गौण हैं । यद्यपि प्रभु के सभी नाम व मन्त्रों में जीव को उद्धार करने की पूर्ण शक्ति निहित-समाविष्ट है, तथापि-रामसकल नामन ते अधिका । होहु नाथ अघ खग गन बधिका ॥ राका रजनी भक्ति तव राम नाम सोइ सोम । अपर नाम उडगन विमल बसहु भगत उर व्योम ॥ अ० कां० ४२ दो० ॥ अर्थात् परशुराम नरसिंह कच्छ मच्छ बाराहादि अवतारों के मन्त्रों के प्रचार की प्रथा नहीं हैं, इन्हें गौण माना गया है । इसलिये मुमुक्षु को श्रीराम, कृष्ण नारायण मन्त्र लेकर भजन करके कल्याण पथारूढ़ होना चाहिये ॥

सभी भगवत् मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र ही सर्व श्रेष्ठ है, यथा—सर्वेषामेव मन्त्राणाँ राममन्त्रः परः स्मृतः ॥२२॥ वाल्मीकि सं० अ० ५ ॥ गति बोध पृ० २४ ॥ षडाक्षर श्रीराम मन्त्र को मन्त्र कहा जाता है । अगस्त संहिता अ० १६-श्लो० ३-४ में कहा गया है कि—षडक्षरोयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघ निवारणः ॥३ और-मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥४॥ यद्यपि दुर्गा, सूर्य, शिव, गणेश इन सभी की उपासना भी की जाती है । करनी चाहिये भी । इन सब की उपासना करने पर भी रोग व्याधि दुख दूर होते हैं, और अनेक प्रकार का वरिष्ठ वैभव भी प्राप्त होता है तथापि मुक्ति की कामना वालों को एकमात्र भगवत् शरणागति ही करनी चाहिये । क्योंकि सभी देवी देवताओं को भगवान् की कृपा से ही सामर्थ प्राप्त हुई है । सारा संसार जानता है—कि श्रीशिवजी भगवान् श्रीरामजी के उपासक परम प्रिय भक्त हैं । श्रीरामनाम के बल से काशी में मरने वाले जीवों को मुक्ति प्रदान करते हैं ।

यथा—जासु नाम बल शंकर काशी । देत सर्बहि समगति अविनासी ॥ अ० कां० १० दो० ॥ श्री शिव जी ने स्वयं ही कहा है कि—काशी मरत जंतु अवलोकी । जासुनाम बलकरौं बिशोकी ॥ सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुवर सब उर अन्तर यामी ॥ बा० कां० ११६ ॥ गणेश जी भी—महिमा जासु जान गण राऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥ श्री राम नाम की कृपा से ही प्रथम पूज्यनीय हुये हैं । उ० कां० ६१ वे दोहा में बताया है कि—रामकामसत कोटि सुभगतन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥ और—मरुत कोटि सत विपुल बल रविसत कोटि प्रकाश । शशि सत कोटि सुशीतल शमन सकल भव पाश ॥ ६१ ॥ अब विचार कीजिये कि सबसे श्रेष्ठ परमाराध्य कौन है । तब कहना ही पड़ेगा कि भगवान् श्री हरि ही सर्वाराध्य और सर्व शरण्य हैं । अस्तु जीव मात्र को भगवान् श्री सीताराम जी के शरणापन्न होकर ही परम शान्ति मिलना संभव है । देवी देवताओं की उपासना से नहीं । भगवान् श्री सीताराम जी कीउपासना बहुत प्रकार से होती है, उनमें से कुछ विधि ये हैं । यथा—मणि विग्रह अथवा अष्टधातु निर्मित भगवत मूर्ति की वैदिक विधि से प्रतिष्ठा करके उन मूर्तियों को साक्षात् भगवान् के भाव से सेवा पूजा की जाती है । कुछ भक्त ब्राह्मणों के सुन्दर सुशील बालकों को श्री सीताराम जी के स्वरूप में शृंगार करके सविधि प्रतिष्ठित करके भगवत् भाव से उपासना करते हैं । कुछ भक्त सालिग्राम की मूर्ति का पूजन करते हैं कोई कोई भक्त श्री सीताराम जी के चित्र में ही भावना पूर्वक उपासना करते हैं । कुछ भक्त मानसी भावना के द्वारा ही उपासना करते हैं । वे प्रत्यक्ष में तो कुछ भी करते नहीं दीखते, किन्तु उनके भावमें भगवान् अपने पार्षदों समेत अहर्निशि अनेक ललित लीलायें करते ही रहते हैं । इसको अष्टयाम सेवा कहा जाता है । अष्टयाम सेवा सद्गुरु कृपा से ही प्राप्त होती है ॥ वास्तव में जब तक साधक का मन भगवान् की अष्टयाम सेवामें नहीं लगता है, तब तक मंत्र या नामजप-काल में मन संसार में घूमता ही रहता है । किन्तु भगवान् की सेवा करने वाले भक्त के मन को इतना अधिक रस प्राप्त होता है कि उसे उतना रस संसार में अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता, तब हार मान कर शान्त रहता है, व्यर्थ चितवन नहीं करता है । ऐसीं महान निधि श्री गुरु कृपा से ही मिलती है, अस्तु किंचित रूप में गुरु महिमा का विचार कर लिया जाये ॥

गुरु शुश्रूषणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयम् ॥ ३८ (देवी भागवत स्कन्ध ४ अ० ३)

अर्थ—गुरु सेवा का पुण्य यह है कि वह अक्षय गति (मोक्ष) पाता है ॥ और—"आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः" ॥ ३० ॥ श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० ७ ॥ आचार्य

(गुरु) ब्रह्म की मूर्ति है । "गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टि भोजनम् । गुरो-मूर्तेः सदाध्यानं गुरोर्मन्त्रं सदा जपेत्" ॥ ५ ॥ वृहद्वैष्णव पद्धति पत्र ६ । सर्वदा गुरु का चरणामृत पीना चाहिये । गुरु के भोजन पा चुकने के बाद गुरुके पाये हुये पदार्थों में बचा हुआ प्रसाद पावै, गुरु की मूर्ति का सदा ध्यान करे । और गुरु का दिया हुआ मन्त्र नित्य नियम से जपना चाहिये ॥ पुनः-

ये चाश्नन्ति गुरूत्सृष्ट भावेन भक्तितः सदा । ते तु बाह्यान्तरः पूतास्तरन्ति भवसागरम् ॥ १३ ॥ श्री गुरोर्भुक्त शेषं तु प्रथम यो भुनक्ति वै । पश्चाद्धरि प्रसादं च महापुण्यं प्रजायते ॥ १६ ॥ अमर रामायण सर्ग ५३ ॥

अर्थ—जो मनुष्य भक्ति भाव से सदा गुरु का पाया शेष प्रसाद पाते हैं । वे बाहर भीतर पवित्र होकर भवसागर को तर जाते हैं ॥ १३ ॥ जो भक्त प्रथम गुरु का पाया हुआ शेष प्रसाद पाता है, और पश्चात् भगवत् प्रसाद पाता है, वह महा-पुण्य (मोक्ष फल) को प्राप्त करता है । "आचार्य प्रसादस्य च सर्वसिद्धि हेतुत्वं ॥ १ ॥ 'चतुश्श्लोकी' स्तोत्र रत्नञ्च (आलवंदार स्तोत्र) श्लोक ११ के भाष्यान्तर-गत बोधायनीय पुराण सार समुच्चय का वचन ॥ आचार्य अर्थात् गुरु का प्रसाद पाना सर्व सिद्धियों का कारण है । (आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः । शंखस्मृति अ० १ श्लो० ७ ॥ और-पिता त्वाचार्य उच्चते । वशिष्ठ स्मृति अ० २-पंक्ति ३) वराहोपनिषद् अ० २ के श्लो० ७६ में लिखा है कि-दुर्लभो विषयात्यागो दुर्लभं तत्वदर्शनम् । दुर्लभा सहजा वस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥ अर्थ—श्री गुरु कृपा के विना यह तीन वस्तुयें दुर्लभ हैं । विषय त्याग-तत्त्वज्ञान-और सहजावस्था । तत्वदर्शन के पर्यायवाची, तत्व-ज्ञान' आत्मज्ञान, इनका आधार तत्वयत्र-प्रकृति (माया) जीव और ब्रह्म के स्वरूप को जानना ॥ तुलसीदास हरि गुरु करुणा विन विमल विवेक न होई । विन विवेक संसार घोरनिधि पार न पावै कोई ॥ (वि० प० ११५) गति वो० पृ० २३४ से २३७ तक । ध्यान दीजिये कि-वृहस्पतिर्गुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नो गृहार्णवे । अविद्याग्रस्त हृदयः कथं तारयितुं क्षमः ॥ ४३ ॥ रोग ग्रस्तो यथा वैद्यः पर रोग चिकित्सकः । तथा गुरुर्मुमुक्षुर्मे गृहस्थोऽयं विडम्बनः ॥ ४४ ॥ देवी भागवत स्कन्ध १ अ० १४ ॥ अर्थ—श्री शुकदेव जी कहते हैं कि—हमको बृहस्पति गुरु प्राप्त हुये हैं, वह गृहरूपी सागर में मग्न रहते हैं । अविद्या से ग्रस्त हृदय होने के कारण कैसे तार सकते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे रोग ग्रस्त वैद्य दूसरे के रोग की चिकित्सा नहीं कर सकता है, वैसे ही गृहस्थ गुरु मुमुक्षु को संसार सागर से कैसे तारेगा । इसलिये गृहस्थ गुरु बनाना विडम्बना मात्र है ॥ ४४ ॥ ग० वो० पृ० २४४ ॥ गुरुष्वीश्वर भावनः । ३२ । श्रीमद्भागवत

स्कन्ध ७ अ० ४ । गुरु में ईश्वर भावना दृष्टि राखै ॥ ३२ ॥ नास्तितीर्थं गुरु समं बन्धच्छेद करं द्विजः । ५० । पद्म पु० भूमि खं० अ० १२३ आनन्द आश्रम प्रेस पूना से प्रकाशित । अर्थ—हे ब्राह्मण ! गुरु के समान कोई भी तीर्थ नहीं है क्यों कि गुरु भवबन्धन को काट देते हैं । तीर्थों में स्नान करने पर पुण्य तो होती है, परन्तु भव बन्धन नहीं मिट सकता है । ग० वो० पृ० २४३ ॥ गुरुदेव बन्धुर्गुरुरेव परागतिः । अनादि माया संसारचस्तारयति दुस्तरात् ॥ १७ ॥ प्रपन्नामृत अ० ११८ ॥ अर्थ—गुरु ही परमगति हैं । क्योंकि अत्यन्त दुस्तर अनादि मायारचित संसार से जो तार देते हैं । श्री मद्भा० स्कन्ध ६ अ० ७ श्लोक २४ में बताया है कि—गुरो प्रसाद मासाद्य न किंचिद् दुर्लभम् ॥ अर्थात् सद्गुरु की प्रसन्नता से मनुष्यों कोकुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ पुनः स्कन्ध ११ अ० १७ के श्लो० २७ में कहा है कि—आशार्य मां विजानोयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्य बुद्धयाऽसूयेत सर्व देव मयो गुरुः ॥ अर्थ—श्री कृष्ण जी ने ऊध्व से कहा कि—आचार्य (गुरु) को मेरा स्वरूप जानकर सेवा करे । और कभी आज्ञा का उलंघन न करे । कभी भी गुरु में मनुष्य बुद्धि न करे, क्यों कि संपूर्ण देवता गुरु में बसते हैं । नोट—शिष्यों को गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये । किन्तु गुरु-जनों को भी उचित है कि—शिष्य की वृत्ति के अनुसार विचार कर आज्ञा देवैं । तभी शास्त्रीय आज्ञा का पालन शिष्य कर पायेगा, अन्यथा बिना विचारे आज्ञा देने पर शिष्य की वृत्ति के विपरीत पड़ने पर वह पालन कर ही कैसे पायेगा । तब गुरु के मन में मेरी आज्ञा नहीं मानता है ऐसा दुख होगा, और शिष्य का भी धर्म नष्ट होगा । वर्तमान परिस्थिति में देखा जाता है कि—कोई नवीन शिष्य बनता है, उस समय वह तो संसार से अकुलाकर आया है, इसलिये अनाशक्त होकर भजन करना चाहता है, गुरुजन स्थानीय व्यवस्था करने में लगाने की चेष्टा करते हैं, परिणाम होता है कि—वह आज्ञा का पालन नहीं कर पाता है तब गुरु लोग उसे भला बुरा कहते हैं, आलसी या मन मुखी बताते हैं । यह ठीक नहीं है, जिसकी वृत्ति शान शौकत में लगती हो, उसे स्थानीय भार वहन की व्यवस्था का व्यवस्थापक बनाना तो ठीक है किन्तु जो शिष्य व्यवहार से अरुचि रखता हो ऐसे व्यक्ति को व्यवहार में प्रवृत्त होने वाली आज्ञा देना गुरु स्वरूप के अनुकूल नहीं है । पुनः श्री मद्भा० स्कन्ध ११ अ० १७ के २६ वे श्लोक में कहा है कि—शुश्रूषमाण आचार्य सदोपासीत नीच-वत् । यानशय्या सनस्थानैर्नाति दूरेकृतांजलि : ॥ अर्थ—जैसे न्युनवर्ग के लोग सावधानी पूर्वक अपने स्वामी की सेवा करते हैं । उसी प्रकार सचेत होकर गुरु की सभी सेवा करे । उनकी सवारी, बिछौना, आसन स्थान से न बहुत दूर रहे न बहुत निकट रहे ।

सर्वदा हाथ जोड़ कर विनम्र स्वभाव से बात करे। नोट—इस श्लोक में कहा गया है कि गुरु की सभी सेवा करे। आजकल सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति की वृत्ति बिगड़ गई है। वह अपने किसी लघु वयस्क शिष्य एवं शिष्या के साथ विषया वृत्ति परायण हो गया है। यद्यपि यह बात अपवाद स्वरूप है, गुरुओं की प्रतिष्ठा मिटाने के लिये जनता में अश्रद्धा करने के लिये भगवत विमुखों के द्वारा यत्र तत्र फैलाई जाती है तथापि इस विषय में विचारना यह है कि-गुरु शिष्य का सम्बन्ध परम पावन एवं भगवत्प्राप्ति के लिये ही है। उसमें ऐसी दुर्गन्ध की स्वप्न में भी आवश्यकता नहीं है। फिरभी कलिकाल की लीलाहै जो भी हो जाय वही थोड़ा है। अस्तु पाठकों से निवेदन है कि—सभी सेवा का तात्पर्य यह नहीं है कि गुरु के साथ विषय की भावना की जाये। गुरु के सत्संग से तो विषय से विमुक्त होने वाली युक्ति सीखनी है। तब उनके साथ विषय की भावना के लिये कोई स्थान ही नहीं है। यदि गुरु की वृत्ति बिगड़ गई हो और अपनी शिष्या को अपने साथ रमण की चर्चा करे संकेत से जनावे, तो उस शिष्या का परम कर्तव्य है कि वह उस समय गुरु के सामने से हट जाये, ऐसा भय न माने कि गुरु आज्ञा न मानेंगे तो हमारा धर्म नष्ट हो जायेगा। सुना जाता है कि कुछ महिलायें तो अरुचि रखते हुये भी धर्म संकट में पड़कर गुरु की रुचि का पालन करतीं हैं। ऐसा करना उचित नहीं है, विषय वासना की रुचि का पालन करने में ही गुरु शिष्य दोनों का धर्म नष्ट होगा। न मानने में धर्म ही होगा अधर्म नहीं। अस्तु बहिनों को चाहिये कि ऐसे व्यक्ति से गुरु शिष्यता का सम्बन्ध ही न जोड़े, जो चरित्र हीन हो, यदि भूल से सम्बन्ध स्थापित हो गया हो, और यह सत्य रूप में जान लिया हो कि गुरु का मेरे प्रति अनुचित भाव है। वह उस गुरु से निस्संकोच सम्बन्ध विच्छेद कर दे। उनसे कुछ भी व्यवहार न करे। अन्य किसी योग्य महान पुरुष के सत्संग से लाभ उठावे। किन्तु ऐसा कार्य विचार कर करे। किसी के वह कहने (फुसलाने) से गुरु का परित्याग न कर दे। इस पर यदि कोई ऐसा कहे कि- गुरु भी शिष्या के साथ विषय की भावना यदि करने लगे हैं, तो फिर स्त्री किसी को गुरु ही न बनावे, तो यह आपत्ति न आयेगी यह भी उचित नहीं है। क्यों कि कभी कभी सुनने को मिलता है कि अमुक गाँव या नगर में अमुक व्यक्ति अपनी लड़की के साथ कहीं बहिन के साथ कहीं चाची मामी भाभी इत्यादि के साथ अनुचित सम्बन्ध रखता है। तब तो उस देश की बहिन बेटियों को उचित है कि अपने पिता एवं भाइयोंसे भी व्यवहार न करें। नहीं उनका धर्म नष्ट हो जायेगा। तब भी सृष्टि का व्यवहार सुचारु रूप से नहीं चल सकता है। इसी

प्रकार सभी गुरु विषयी नहीं होते हैं। हजार दो हजार में यदि एक ऐसा पतित हो भी तो उसकी कुछ भी गिनती नहीं है। अच्छे और खराब व्यक्ति सभी देश एवं सभी समाजों में है। इसलिये किसी एक व्यक्ति के अपराध पर समस्त समाज को पाखण्डी या विषई मानना भारी भूल है। इसलिये कहावत प्रसिद्ध है कि—पानी पीजै छान के—गुरु कीजै जान के ।। यह तो सर्वथा सत्य है कि—सद्‌गुरु की कृपा बिना आत्मा एवं परमात्मा का ज्ञान नहीं हो पाता है उस ज्ञान के बिना कर्तव्य अकर्तव्य का बोध नहीं हो पाता, तब संसार चक्र से मुक्ति कैसे होगी। अस्तु मानव मात्र को भगवत् भजन निष्ठ विषय विमुख परम विरक्त सद्‌गुरु की कृपा से भक्ति भाव समझ करके भगवत् भजन करना ही परम श्रेयकर है। गति बोध पृ० २४७ ।।

तेजसानि गुरवे दद्यात् । १ । स्वगुरोपदेशतः ।। ३५ ।। कठरुद्रोपनिषद् ।। गुरुभक्तिं सदाकुर्याच्छ्रेयसेभूयसे नरः ३० ।। गुरुरेव हरि साक्षात् ।। ३१ ।। ब्रह्मविद्योपनिषद् ।। सकृत् ज्ञानेन मुक्तिः स्य त्सम्यग्ज्ञाने स्वयं गुरूः ।। ४३ ।। तेज विन्दूपनिषद ।। गुरावीश्वर बुद्धिश्च तदाज्ञा परिपालनम् । स्वेशस्य तज्ज-नानां च सेवनं मायया विना ।। ४३ ।। श्री हनुमत्संहिता अ० ६ ।।

अर्थ—मनुष्य को तेज गुरु ही देता है। १ ।। उपदेश अपना ही गुरु देता है, जिसे साधक गुरु मानता है, उसके वचनों में श्रद्धा विश्वास होने के कारण अपने ही गुरु का उपदेश अधिकतर लाभ करता है ।। ३५ ।। मनुष्य अपने कल्याण एवं वृद्धि के लिये सर्वदा गुरु की भक्ति (सेवा) करे—गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान ।। अ० कां० ३० दो० ।। गुरु साक्षात् भगवान् श्री हरि के स्वरूप हैं। ३१ ।। किसी भी प्रकार एक बार भी आत्मा परमात्मा का ज्ञान होने पर मुक्ति होती है, और जो गुरु की शरण होकर सर्वदा सत्संग में आत्मतत्व एवं परमात्म तत्व का ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं, वह सहज में ही मुक्त हो जाते हैं ।। ४३ ।। शिष्य गुरु में ईश्वर बुद्धि राखै, उनकी आज्ञा का पालन करै। और निष्कपट भाव से सपरिवार सेवा करे। पुनः—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्माता गुरुः पिता। गुरुर्बन्धुर्गुरुर्मित्रं गुरुरेव सुखप्रदः ।। ४५।। अर्थ—गुरु ब्रह्मा के समान शिष्य के हृदय में मन्त्र देकर भक्ति की सृष्टि करते हैं। गुरु ही विष्णु रूप से सत्संग रूपी सम्बल देकर भरण पोषण करते हैं। और गुरु ही माता के समान वात्सल्य पूर्वक शिष्य को भगवान् से परिचय कराते हैं, कि ये प्रभु ही आपके अपने हैं। जैसे माता अबोध बालक को सिखाती है कि ये आपके पिता हैं। उसी प्रकार गुरु शिष्य का भगवान् से सम्बन्ध कराते हैं। गुरु ही मित्र के समान सच्ची विमर्श की बात बताते हैं कि इसमें आपको लाभ और उस कार्य में हानि होगी,

अस्तु ऐसा ही करो, वैसा कार्य न करो '। इस असारसंसार में सत प्रेरणा करके भगवत् पथ पर चलाकर गुरु ही एकमात्र अक्षय सुख (अखण्ड सुख) देनेवाले हैं ॥ वाल्मीकि सं० अ० ६ का ४५ वां श्लोक का अर्थ हुआ ॥ इसी अध्याय के ४७-४८ श्लोक देखिए।

रुष्टेसु सर्वदेवेषु रक्षतीहरमापतिः क्रुद्धे रमापती भव गुरुरक्षां करोतिह ॥४७॥ कोऽपि रक्षाकरो नास्ति गुरौ संरुष्टतांगते। ततः सर्व प्रयत्नेन प्रसाद्यो गुरुरञ्जसा ॥४८॥ नारद पांचरात्तान्तर्गत वा० सं० अ० ६॥

अर्थ—यदि सब देवता अप्रसन्न हो जायें, तो भगवान् श्रीहरि रक्षा करसकते हैं। और यदि किसी विशेष अपराध होजाने पर भगवान श्रीहरि भी रूठ जायें, तो गुरु रक्षा कर सकते हैं कारण यह है कि गुरु भगवान् के भक्त हैं, भक्तों की प्रार्थना भगवान् टालने में असमर्थ हैं ॥४७॥ और यदि गुरु रूठ जायें, तो कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है। नोट—फिर से पाठक सावधान हो जायें। गुरु का अप्रसन्न होना अनिष्ट का मूल है, तथापि गुरु की प्रसन्नता के लिये आवश्यकर्तव्य ही करना चाहिये। अनावश्यक या अनुचित अकर्तव्य करणीय नहीं हैं। किन सेवा कार्यों के द्वारा गुरु शिष्य का सम्वन्ध पवित्र एवं विशुद्ध बना रहे। वही आज्ञा माननीय हैं। जिन आज्ञों के पालन में गुरु शिष्य दोनों का स्वरूप नष्ट होने या लोकापवाद की सम्भावना हो, वैसी आज्ञा न तो गुरु को देना चाहिए और न शिष्य को मानना ही चाहिये ॥गतिबोध पृ० ४७-४८॥ से पुनः—नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशेन च। तुष्येयं सर्व भूतात्मा गुरु शुश्रूपयाथा ॥३४॥ श्रीमद्भा० स्कंध १० अ०८०॥ अर्थ—श्रीकृष्णजी श्रीसुदामाजी से कहते हैं कि—मैं सब प्राणियों की आत्मा में जैसा गुरु सेवा से प्रसन्न होता हूँ। ऐसा ब्रह्मचर्य पालन, यज्ञ करने, गृहस्थाश्रम; वानप्रस्थ और सन्यास धर्मों से प्रसन्न नहीं होता ॥४१ वां श्लोक भी द्रष्टव्य है ॥३४॥ इसी अध्याय का ४३॥ "गुरोरनुपदेशेन पुमान्पूर्णः प्रशान्त"॥४३॥ अर्थात श्रीगुरु की कृपा से ही मनुष्य भगवत्तत्व का बोध प्राप्त करके पूर्णमनोरथ होकर परमशान्ति (मोक्ष) पाता है ॥ और भी देखिए कि—"कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्य प्लवबद्दृढम। अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्" योगशिखोपनिषद् अ० ६ मंत्र ७६॥ अनेक वासनाओं के अभ्यास से जकड़ा हुआ जीव इस संसार सागर में अर्थात वारम्बार जन्म मरन के चक्र में पड़ा है इस कठिन दुख से पार होने के लिये गुरु वाक्य रूपी नौका है, उसके खेने वाले गुरु हैं। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय से मुक्त होना सम्भव नहीं है। अतएव सभी को गुरु वरण करके अपना कर्तव्या-

कर्तव्य का और आत्मा परमात्मा का बोध प्राप्त कर भगवत भक्ति करके मानवता का लाभ उठाना चाहिए ॥ग० बो० पृ० २५०॥

गुरुः साक्षादादि नारायणः पुरुषः ॥ त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद अ० ८ पंक्ति ७१॥ श्रीगुरुदेव साक्षात् आदिनारायण पुरुष के स्वरूप हैं। गुरो त्वमेव देवस्त्वं त्वमेव परमागतिः। त्वमेव परमोधर्मस्त्वमेव परमं तपः ॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ४ श्लोक १८॥ तत्त्वं गुरुसमं नास्ति न देवः केशवात्परः ॥३६। नारदीय पु० पू० खं० अ० ३४॥ श्रीगुरुः सर्वकारण भूताशक्तिः ।२॥ भावनोपनिषद् पंक्ति २॥ यदा मुक्तिर्नसन्देहो यदि तुष्टः स्वयं गुरुः ॥२६॥ योगशिखोपनिषद् अ० ६॥ गुरु शुश्रूषयां भक्त्या ॥३०॥ भाग० स्कन्ध ७ अ० ७॥ प्रक्षाल्य चरणौ पात्रे प्राणपात्योपयुज्य च। नित्यं विधिवदर्घ्याद्यै राप्लुतो-ऽभ्यर्चयेद् गुरुम् ॥८६॥ योऽसौ मन्त्रवरं प्रादात्संसारोच्छेद साधनम्। प्रतीच्छेद् गुरुवर्यस्य तस्योच्छिष्टं सु पावनम् ॥६३॥ भरद्वाज सं० अ० ३ ॥ ध्यान-मूलं गुरोमूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्। मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ ७६॥ प्रपन्नामृत अ० ४२॥ सर्वतीर्थावगाहस्य च प्राप्नोति फलंनरः। गुरोः पादोदकं पीत्वा शेष शिरसिधारयेत् ॥१८॥ गुरुगीता॥

अर्थ - शिष्य गुरु से इसप्रकार प्रार्थना करे कि—हे गुरुदेव ! आप ही हमारे सर्वस्व देवता या ईश्वर हो, आप ही हमारी परमगति हो, आप ही हमारे परमधर्म हैं, और आपही हमारे परम तप हैं ॥१८॥ गुरु के समान कोई तत्त्व नहीं है, और भगवान केशव के समान कोई देवता नहीं है ॥३६॥ गुरु सब कारणों की शक्ति हैं ॥२॥ यदि किसी शिष्य पर उसकी सेवा विनम्रता देखकर उसके बिना प्रार्थना किये प्रसन्न हो जायें, तो उस शिष्य की मुक्ति होने में कोई सन्देह नहीं है। इसलिए शिष्यों को गुरु की भावपूर्वक प्रेम से सेवा करना चाहिए ॥२६॥ भगवद्भक्त गुरु सेवा करे। अथवा गुरु की सेवा करने से ही भक्त होता है ॥३०॥ शिष्य को अपने गुरु के पाँव (चरण) किसी थाली इत्यादि पात्र (बर्तन) में धोना चाहिए। पुनः साष्टांग दण्डवत प्रणाम करे और नित्यनियम से विधिपूर्वक अर्घपाद्यादि देकर पूजन करे ॥ ८६॥ नोट—गुरु के चरण पृथ्वी पर धोने से चरणामृत पैर के नीचे पड़ेगा। यह अनुचित है। अस्तु श्रीगुरु के चरणों को पात्र में ही धोना चाहिये ॥ जो गुरु शिष्य को संसार नाशक अर्थात आवागमन को मिटाने वाले, मोक्ष देने वाले श्रेष्ठ मन्त्र रत्न देते हैं। ऐसे श्रेष्ठ गुरुदेव का प्रसाद अन्न (गुरु के पाने के बाद बचा हुआ शेष भोजन) पाने से मनुष्य पवित्र होता है, और भगवान् में भक्ति बढ़ती है।

इसलिये शिष्यों को निसंकोच भाव से गुरु का प्रसाद पाना चाहिये ॥ ६३ ॥ गुरु की मूर्ति ध्यान का मूल है । गुरुदेव के चरण पूजा के मूल हैं । गुरुदेव का वाक्य ही मन्त्रका मूल है । और श्री गुरु कृपा ही मोक्ष का मूल है ॥ ७६ ॥ संसार में जितने सब तीर्थ हैं, उनमें स्नान करने से मनुष्य को जो भी फल मिलता है । वही फल श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रेम से गुरु चरणामृत पीने और मस्तक पर चढ़ाने से होता है ॥ १८ ॥ गति बो० पृ० २५१ से २५४ तक ॥ भवन्तीह दरिद्रास्ते पुत्र दार विवर्जिताः । नरकाश्चैव देहान्ते त्रियक्षुप्रभवन्ति ते ॥ २३ ॥ ये गुर्वाज्ञां कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः । न तेषां नरकक्लेश निस्तारो मुनिसत्तम ॥ २४ ॥ अगस्त सं० अ० ८ ॥ अर्थ हे मुनि श्रेष्ठ ! जो गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं. वह पापी हैं और सब मनुष्यों में नीच हैं । वह जीते ही में स्त्री पुत्र से हीन होकर दरिद्री हो जाते हैं । और देहान्त होने पर नरक में जाकर नाना प्रकार के दुख भोगते हैं पुनः जब कभी संसार में जन्म होता है, तो त्रियकयोनि में रहते हैं । २३-२४ ॥ गुरु से द्रोह करने पर अगस्त सं० अ० ८ श्लोक २७ में लिखा है कि—शूकरत्वं भवत्येव तेषां जन्मशतेष्वपि । ये गुरुद्रोहिणो मूढ़ाः सततं पाप कारिणः ॥ २७ ॥ अर्थ —जो शिष्य गुरु से द्रोह करते हैं, वे मरकर नरक जाते हैं, नरक से निकलने पर सौ जन्मों तक शूकर की देह पाते हैं । इसी के प्रथम वाले श्लोक में नरक जाने की चर्चा है ॥

"उच्छिष्टं गुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्ट मुच्छिष्टोपहतं च" ॥ १७ ॥ वशिष्ठ स्मृति अ० १४ ॥ अर्थ—गुरु के अतिरिक्त दूसरे का उच्छिष्ट (जूठा) भोजन और अपना भी खाया हुआ उच्छिष्ट पुनः न खावे । पुनः गौतम स्मृति अ० २ के श्लोक में लिखा है कि—नोच्छिष्टाशन स्नपन प्रसाधन पादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि ॥ अर्थ--गुरु के भोजन करने के बाद गुरु का पाया हुआ प्रसाद पाना, गुरु को स्नान कराना, वस्त्रादि से शृंगार करना, पैर धोना उवटन लगाना. चरणों का स्पर्श करना शिष्य का धर्म है ॥ वेदाभ्यास तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः । अहिंसा गुरु सेवा च निःश्रेयस करं परम् ॥ ८३ ॥ मनुस्मृति अ० १२ ॥ अर्थ—वेद पठन पाठन का अभ्यास १-तपस्या २-ज्ञान ३-कर्मेइन्द्रि और ज्ञान इन्द्रिय का संयम ४-अहिंसा ५-गुरु सेवा ६-ये बातें निश्चय ही कल्याण करेंगी ॥ "एकाक्षर प्रदातारं ये गुरुं नाभिनन्दति । तस्य श्रुतं तथा ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ३६ ॥ शाठ्यायनीयोपनिषद्" ॥ अर्थ—एक भी अक्षर देने वाले को जो गुरु नहीं मानता है, उसका शास्त्र पढ़ना वा ज्ञान ऐसे समाप्त हो जाता है. जैसे कि छेद वाले घड़े का पानी निकल जाता है ॥ तब सोचा जाये कि जो गुरु भगवान का मन्त्र देता है, उपासना रहस्या भजन की विधि बताता है, उसे गुरु न मानना अथवा उसका अनादर-तिरस्कार करने में क्या होगा । अस्तु संसार

से मुक्ति और भगवत्प्राप्ति के इच्छुकों को कुतंक लज्जा संकोच त्याग कर भगवत् भजननिष्ट विरक्त महत्पुरुषों से पंच संस्कार पूर्वक भगवत् मन्त्र की दीक्षा अविलम्ब लेकर भजन कर जीवन का फल प्राप्त करना चाहिये।

* स्त्री और गुरु *

[कल्याण वर्ष ४३ अंक ७ पृ० १०५० द्वितीय कालम पंक्ति १३ से २६ तक जुलाई १९६९ ई०] स्त्री किसी पर पुरुष को अपना गुरु न बनावे। सन्त महात्मा का भी चरण स्पर्श न करे। उसके लिये तो पति ही सब कुछ है। यथा—पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः। प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः [वा० रा० ७।४८।१७] अर्थात् स्त्री के लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु है तथा पति ही गुरु है, अतएव प्राणों की बाजी लगाकर भी उसे विशेष रूप से पति का प्रिय करना चाहिये॥ पुनः—भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्म तीर्थ व्रतानि च। तस्माद् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥ [स्कन्ध पु० काशी खण्ड ४।४८] पति ही देवता, पति ही गुरु तथा धर्म, तीर्थ और व्रत भी पति ही है। इसलिये सब कुछ त्याग कर स्त्री को एक पति की ही भली भाँति पूजा सेवा करनी चाहिये॥ और—पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् (शतपथ) एकमात्र पति ही स्त्री का गुरु है॥

उपर्युक्त शब्दों की समीक्षा—परमात्मा भगवान् श्री कृष्ण जी कहते हैं कि—गति—'भर्ता' 'प्रभुः' साक्षी-निवासः शरणं सुहृत्॥ (गीता ९।१८)॥ मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पाप योनयः। 'स्त्री' वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। (गीता ९।३२) अर्थात् हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पापयोनि वाले भी जो कोई होवे, वे भी मेरे शरण होकर परमगति को (ही) प्राप्त होते हैं॥ पुनः गोपियाँ भगवान् श्री कृष्ण से कहती हैं—"कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्। नित्य प्रिये पति सुतादिभिरार्तिदैः किम्॥ श्री मद्भागवत् १०।२९।३३॥ अर्थात् तत्त्वज्ञानी महत्पुरुष आपसे ही प्रेम करते हैं। क्यों कि आप सभी की आत्मा हो। आप सर्वदा एकरस नित्य सभी के परम प्रिय हैं। अस्तु आपको पाकर परमदुखद पतिपुत्रादि से क्या प्रयोजन है॥ श्री तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरीसम यद्यपि परम सनेही॥ अन्य साधारण प्रेमियों की कौन कहे, भगवद्भक्ति के बाधक सभी प्रेमी त्याज्य हैं। जब कि—तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बन्धु भरत महतारी। बलिगुरु तज्यो कन्तवृज वनितन भय जगमंगलकारी॥ यद्यपि माता पिता का त्याग करने पर पुत्र को, तथा भाई को विपत्ति के समय में त्यागनेपर भाई को, पतिकी आज्ञाका त्याग करने पर पत्नी को और सर्वपूज्यों

के भी पूज्य गुरु की आज्ञा न मानने पर महानपाप लगता है । तथापि भगवत्-विमुख होने पर भक्त सभी को त्यागकर भगवान् की भक्ति करके कल्याण का ही नहीं परमकल्याण का अधिकारी होता है ॥ वेद ऋषि भी कहते हैं कि—

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र 'सत्पतिं नरस्त्वां' काष्ठास्वर्वतः ॥ सामवेद ८०

श्रीरामचरितमानस में भगवान के वचन हैं कि—सन्तचरणपंकज अतिप्रेमा। मनक्रमवचन भजनदृढ़नेमा॥ और—गुरुपितुमातुबन्धु पतिदेवा। सबमोहिंकहंजानै दृढ़-सेवा॥ इत्यादि वचनों से स्पष्ट है कि—एक परमात्मा ही सच्चेपति हैं। बल्कि वह पतियों का भी पति है—यथा—"तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं-पतीनां" परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद्) इस प्रकार स्त्रियों के लिए ईश्वर की उपासना पुरुषों के समान ही अनिवार्य है। बल्कि पति यदि ईश्वर की उपासना का विरोध करे तो उनकी आज्ञा व उनको भी त्याग कर परमात्मा की उपासना करके अपना कल्याण करे। कल्याण पत्रिका में प्रकाशित उपर्युक्त प्रसंगका समुचित उत्तर देने के पूर्व वह सिद्ध करदेना आवश्यक है कि—स्त्रियों को दीक्षालेना भी अत्यावश्यक हैं। वेद के ऋषियों ने आरम्भ में ही दीक्षा लेकर तपस्या की ऐसा वेदमन्त्र से ही सिद्ध है॥ यथा—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपसेदुरग्रे ।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मैदेवा उपसंनमन्तु ॥ (अथर्ववेद १९ ।

वेद के ऋषिगण केवल पुरुष ही नहीं थे। घोषा विश्ववारा, अपाला, सुलभा, मैत्रेयी आदि अनेक स्त्रियाँ भी वेद के ऋषिकाएं थी। अतएव उनको भी दीक्षा लेना उपर्युक्त मन्त्र से सिद्ध है। यम स्मृति के अनुसार कन्याओं का उपनयन संस्कार भी होता था। देव रमणियों को यज्ञ में बुलाया जाता था। (ऋ० १।२।६-१०) इला पौरोहित्य कराती थी, वह धर्मोपदेशिका भी थी। (ऋ० १।३।११) इस प्रकार स्त्रियों को दीक्षा लेना, वेद मन्त्रों का दर्शन करना, धर्मोपदेश करना आदि बातें वेदों से ही सिद्ध हैं अतएव वेद विरुद्ध कोई भी मत नहीं माना जा सकता। अब कल्याण में प्रकाशित बातों को धारावाहिक समीक्षा सुनें।

वहाँ सबसे पहले कहा गया है कि—किसी भी पर पुरुष को अपना गुरु नहीं बनावै। सन्त महात्मा का भी चरण स्पर्शन करै। उसके लिये तो पति ही सब कुछ है। यहाँ पुरुष शब्द किसका वाचक है। व्यक्ति या पति (Husbend) का। पति का पुरुष शब्द यदि पति का वाचक है तो 'पर पुरुष' का अर्थ होगा 'दूसरे का पति'

और तब इसका तात्पर्य होगा कि जो दूसरे का पति है अर्थात् स्त्रीवान् वा गृहस्थ है उसको गुरु नहीं बनावें। इस अर्थ को माना जा सकता है। परन्तु यदि पुरुष शब्द व्यक्ति का वाचक माना जाय और पति से व्यावर्त किया जाय तो पर पुरुष का अर्थ होगा अपनी आत्मा व अपने को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति जिसमें उसका पति भी सामिल है। तब उसका तात्पर्य होगा कि अपने आत्मा को छोड़कर किसी भी अन्य व्यक्ति को गुरु न बनावे अर्थात् अपना गुरु अपने ही हैं वा बने। परन्तु इसमें आत्माश्रय(Pefion Prencipal) का दोष आता है। यदि उपर्युक्त इन दो अर्थों को छोड़कर किसी पर पर पुरुष को अपना गुरु न बनावे' का अर्थ यह माने कि किसी दूसरे व्यक्ति वा पति को गुरु न बनाकर अपने पति को ही गुरु बनावें। तो भी सर्वप्रथम तो स्त्रियों के लिए गुरु बनाने की आवश्यकता अनिवार्य सिद्ध होती ही है, भेद सिर्फ इतना ही है कि यहाँ दूसरे को नहीं केवल अपने पति को ही गुरु बनाने का विधान है। अब यहाँ इस प्रसंग में' गुरु शब्द का प्रयोग किया गया है। पहले इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। गुरु का अर्थ विद्यादाता, मन्त्रदाता, श्रेष्ठजनभारी, देर से पचने वाला आदि होता है। अतः यहाँ लेखक ने किस अर्थ में गुरु शब्द का प्रयोग किया है। भारी, देर से पचने वाला आदि अन्य अर्थों में तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि इन अर्थों के साथ इस प्रसंग वा वाक्य की संगति बैठती ही नहीं है। यदि गुरु शब्द का अर्थ यहाँ श्रेष्ठजन माने तो वह भी संगति पूर्ण नहीं होता। क्योंकि पिता पितामह, चाचा, राजा श्वसुर आदि अन्य श्रेष्ठजन स्त्रियों के भी हैं। तब निश्चित रूप से 'गुरु' शब्द यहाँ मन्त्रदाता व दीक्षा गुरू के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। अतः यदि उपर्युक्त कथन में अपने पति को दीक्षा गुरु बनाने की बात माने, तो इसमें बहुत सा दोष उत्पन्न होता है। पति को दीक्षा गुरु बनाने पर सर्वप्रथम गुरु शिष्य का सम्बन्ध और कर्तव्य का पालन नहीं हो सकता। पुनः पति पत्नी का संयोग अगम्यागमन का पाप होगा। अतएव पति को दीक्षा गुरु कभी भी नहीं बनाया जा सकता, यहाँ यह जो कहा गया है कि सन्त महात्मा का भी चरण स्पर्श न करे' वह भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है और श्रीरामचरितमानस में कथित सदाचारों के विरुद्ध है। कीन्ह प्रशंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्ह पग धूरी॥ पूजे गुरु पद कमल वहोरी। कीन्हि विनय उर प्रीति न थोरी॥ बधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीश। पुनि-पुनि वदत गुरु चरण देत अशीष मुनीशर (वालकाण्ड ३५२)। सासु ससुर गुरु सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु आनुसरेहू॥ (वालकाण्ड ३३४)

इत्यादि रामायण विरोधी उपर्युक्त कथन माननीय नहीं हो सकता। यह कहना भी महान भूल है—कि 'उसके लिये सब कुछ पति ही है' क्या पति ही उसका पिता है। क्या पति ही उसका ईश्वर है। क्या पति ही उसको माता है। यदि नहीं तो उपर्युक्त कथन भ्रामक और गलत है। यदि हां कहेंगे तो पिता पुत्री का सम्बन्ध नहीं निभ सकता और बिना ईश्वर की उपासना किये पति (जीव) की उपासना से मुक्ति नहीं मिल सकती क्योंकि जीव को कहीं उपास्य नहीं माना गया है। अतएव पति न तो पिता हो सकता और न ईश्वर ही। अतः यह कहना कि पति ही उसके लिये सब कुछ है' बिल्कुल गलत और अनर्थ का उत्पादक है। पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धु पतिर्गुरुः। प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥ में देवता शब्द पूज्यता का वाचक है और 'गुरु' शब्द श्रेष्ठजन का वाचक है। स्त्रियों के लिए पति आदरणीय है, पतिही उसका यः तिष्ठति स बान्धवा के अनुसार संकटकाल में सच्चा सहायक है पति उसका श्रेष्ठजन है, वह प्राण से भी प्रिय है। इसलिये पति की सेवा विशेष रूप से करनी चाहिये' । यही उक्तश्लोक का अर्थ और तात्पर्य है। न कि पति ही भाई देवता और दीक्षागुरु। क्योंकि ऐसा अर्थ मानने पर भाई बहन गुरु शिष्या का पवित्र सम्बन्ध स्थापित नहीं रहता। भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्म तीर्थ व्रतानि च। तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥

इस श्लोक का भी अर्थ यह कदापि नहीं है कि स्त्रियों को धर्म, तीर्थ व्रत, देवाराधन और गुरु नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णुः गुरुरेव महेश्वरः गुरु साक्षात् परब्रह्म कहने पर भी गुरु से भिन्न परमात्मा की उपासना का निषेध नहीं है उसी प्रकार उपर्युक्त स्तुतिवाक्य—भर्ता देवो, से भी देव, गुरुधर्म तीर्थ और व्रत का उनके लिये निषेध नहीं होता। हरतालिक वट सावित्री आदि व्रत तो केवल स्त्रियों के लिये ही हैं। उस व्रत में देव पूजन भी होता है। 'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्' इस स्तुति वाक्य से भी स्त्रियों के लिये गुरु करना और सन्त पद धूरी लेने का निषेध नहीं होता वेद और शास्त्रों में अनेक स्त्रियों के तपस्या करने, वेद पढ़ने धर्मोपदेश करने मन्त्र लेने, गुरु करने आदि के दृष्टान्त मिलते हैं। अतः यह कहना अल्पज्ञता है कि स्त्रियों को गुरु नहीं बनाना चाहिए। माता पार्वती ने भी नारद जी को गुरु माना है—

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ॥ गुरु के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही॥ जौ तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीशा। सुनतिउँ सिख' तुम्हारि धरि शीशा॥ तजउँ न नारद कर उपदेशू।

प्रभु कहहिं सत बार महेशू ।। इससे सिद्ध है कि स्त्रियों के लिए भी गुरु उतना ही आवश्यक है जितना कि पुरुष के लिये । कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री का पति ही गुरु है । कुछ लोग कहते हैं कि स्त्रियों के लिये पति की सेवा ही ईश्वर की उपासना है, अतएव स्त्रियों को पति सेवा छोड़कर तीर्थ, व्रत, धर्म, ईश्वरोपासना आदि नहीं करनी चाहिये । इस प्रकार स्त्री के सम्बन्ध में भिन्न-२ विचार प्रकट किये जाते हैं ।

परन्तु विचार करने पर ये सभी धारणायें भ्रान्त और गलत सिद्ध होती हैं । विवाह के पावन सूत्र द्वारा स्त्री और पुरुष एक साथ सम्बन्धित होते हैं । उस विवाह में स्त्री सात प्रतिज्ञायें करती हैं, जिसमें कहीं भी यह नहीं कहती है कि आप हमारे ईश्वर होंगे वा हैं वा आप ही हमारे गुरु हैं वा होंगे । इसी प्रकार यह भी नहीं कहती है कि आपकी सेवा के सिवा मेरा कोई धर्म कर्म, व्रत, यज्ञ आदि नहीं है । वरन वह स्पष्ट कहती है कि—तीर्थ व्रतोद्यापन यज्ञ दानं, मया सहत्वं यदि कुन्तु कुर्याः । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद् वाक्यं प्रथमं कुमारी । हव्यप्रदानैरम-राम्नितृश्चं, कव्यप्रदानैं र्यदि पूजयेथा । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं, जगादूकन्या वचनं द्वितीयम् ।। कुटुम्ब रक्षा भरणे यदित्वं कुर्याः पशूनां परिपालनं च । वमांगमा-यामि तदा त्वदीयं, जगाद् कन्या वचनं तृतीयम ।। आयव्ययौ धान्य धनादिकानां, पृष्टवा निवेशं च गृहे निदध्याः । वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद् कन्या वचनं चतुर्थम् ।। देवालयाराम तडाग कूप वापीर्विदध्या यदि पूजयेथा । वामांगमायामि तदात्वदीयं जगाद् कन्या वचनं च पञ्चमम ।। दशान्तरेवा स्वपुरान्तरेवा, यदा विदध्या क्रय विक-यौत्वम । वामांगमायामि तदा त्वदीयं. जगाद् कन्या वचनं च षष्ठम ।। न सेवनीया पर पारकीया, त्वया भवेद भाविनिकामिनीवि । वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद् कन्या वचनं च सप्तम ।।

अर्थात् तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दान, हव्यदान द्वारादेवाराधन । कव्यदान द्वारा पितृ पूजन, कुटुम्ब पालन, पशु पालन; आयव्यय की व्यवस्था देवालय, मन्दिर, बाग तड़ाग-कूप, वापी आदि निर्माण स्वदेश और परदेश में क्रय विक्रय आदि जो-जो तुम करोगे सब में मैं वामांगनी बनी रहूँगी । इस प्रकार स्पष्ट है कि स्त्रियों का अधिकार समान है और तीर्थ व्रतादि जितना पुरुषों के लिये आवश्यक है उतना स्त्रियों के लिये भी । बल्कि बिना स्त्री के पुरुष तीर्थादि कोई भी कार्य अलग नहीं कर सकता । सर्वदा स्त्री प्रतिज्ञा के अनुसार उसके साथ ही रहेगी यह भी कहा गया है– एक चक्रो रथो यद्वदेक पक्षो यथा खगः अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्व कर्मसु ।। जिस प्रकार एक पहिये का रथ नहीं चल सकता एक पंख का पक्षी नहीं उड़ सकती । उसी प्रकार स्त्री को छोड़कर अकेला पुरुष कोई भी कर्म करने में अयोग्य है ।

इस तरह यह भली भाँति सिद्ध है कि न तो पति परमात्मा है और न गुरु। वह स्त्री का पूरक अङ्ग है। स्त्री और पुरुष के कर्तव्य में कोई भेद नहीं है, दोनोंको अधिकार है, दोनों का कर्तव्य भी। जिस तीर्थ, व्रत, धर्म आदि पुरुष के लिये आवश्यकता है उसी प्रकार स्त्री के लिये भी। यदि स्त्री अलग तीर्थ व्रत नहीं कर सकती है तो उसी प्रकार पुरुष भी अलग नहीं कर सकता है। राम जी को भी सोने की श्रीसीताजी बनानी पड़ीथीं। अतः यदि पुरुष केलिये गुरु आवश्यकहै तो स्त्रियोंके लिये भी उतना ही आवश्यक है। इसी प्रकार पति परमात्मा नहीं है। परमात्मा पति का भी पति है 'पतिः पतीनां' (श्वेताश्वरोपनिषद्) है और वह परम पति है। वल्कि परमात्मा ही सच्चा पति है। मीरा ने भी स्पष्ट कहा हैं—'ऐसे वर को क्या वरो, जो जन्मे और मरि जाये। वर वरिये इक साँवरो, तेरो चुड़लो अमर हो जाये॥ वेद मे—तमाशीनं जगतस्त स्थुषः पतिं, धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। (शु० प० २५।२८) भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् (शु० प० १३।४) दिव्योगन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक, एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। तंत्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव, नमस्ते अस्तु दिविते सधस्थम्॥ (अथर्व० २।२।१) त्वा वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्ववर्तः॥ (साम० ८०६)। परमात्मा को सत्पति कहा गया है। श्री मद्भागवत् में लिखा है— नृदेहमाद्यं सुलभं सु दुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्। मयाऽनुकूलेन नमस्तेरितं, पुमान् भवाब्धि न तरेत स आत्महा॥ (श्री मद्भा० ११।२०।१७)

अर्थ—देवदुर्लभ मानव शरीर भगवत्कृपा से सुलभ (प्राप्त) हो गया। इस जीवन नौका के सद्गुरु कर्णधार (खेने वाले केवट) हैं। भगवान् की अनुकूलता (प्रसन्नता) ही अनुकूल वायु है। इस शरीर को पाकर भी संसार सागर से पार न हो पाया वह अपनी आत्मा का हनन करता है॥

नयनन्हि सन्त दरस नहि देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा॥ ते सिर कटु तुम्वरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पद मूला॥ अस निज हृदय विचार, तजु संसय भजु राम पद। सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रमतम रविकर वचन मम॥

जब पार्वती जी को भी भगवान् राम जी की उपासना करने का आदेश शंकर जी देते रहते हैं तब साधारण स्त्रियाँ विना भगवान् की उपासना के भवसागर कैसे तर सकती हैं। पुनः पार्वती जी को हरि और गुरु के चरण कमल नमन करने का उपदेश भी है। जिससे स्त्रियों के लिये भी गुरु की आवश्यकता सिद्ध होती है। मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं। आपु गये अरु घालहिं आनहिं॥ गुरुबिन भव निधि तरै न कोई। जौं विरंचि शंकर सम होई॥ करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ

करि पावा ॥ सद्गुरु वेद वचन विश्वासा । संजम यह न विषय कै आसा ॥ कुछ लोग यह कहते हैं कि स्त्री को साधु सन्त अथवा गुरु का चरण नहीं छूना चाहिये। परन्तु यह बात भी भ्राम्य है । मनु जी ने लिखा है—विप्रोष्य पादग्रहणं मन्वहं चाभिवादि-नम् । गुरु दारेषु कुर्वीत सतांधर्म मनुस्मरन् ॥ (२।२१७) शिष्य सज्जनों के धर्म को स्मरण करता हुआ गुरु पत्नियों का चरण स्पर्श करे, और उन्हें प्रणाम करे । आचार्ये तु खलुप्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते । गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद् वृति माचरेत् ।

आचार्य के मरजाने के बाद गुणवान गुरु पुत्र में, गुरु पत्नि में अथवा गुरु के सपिण्ड लोगों में गुरु के समान व्यवहार करे । इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जब शिष्य का गुरु पत्नी का चरण स्पर्श करना विहितवा उचित है तथा धर्म है तो शिष्या को भी गुरु का चरण स्पर्श करना भी विहित और धर्म ही है । श्री रामचरिनमानस में लिखा है—सब उदार सब पर उपकारी । विप्र चरण सेवक नर नारी ॥ इससे भी सिद्ध है कि गुरु के चरण का स्पर्श करना नारी के लिए निसिद्ध नहीं वरन प्रशस्त है । बिना सद्गुरु के मुक्ति नहीं हो सकती—सद्गुरु वेद वचन विश्वाशा । संजम यह न विषय कै आशा ॥ रघुपति भगति सजीवन मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥ नवमहुं एकहु जिनके होई । नारि पुरुषसचराचर कोई ॥ सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥ जप, तप, व्रत, दम, संजम नेमा । गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा ॥

मनु ने मन्त्रदाता को पिता कहा है—"पिता भवति मन्त्रदः" एवं पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ (मनु० २।१५३) स्त्रियों के लिये जीवपति आदर और सेवा के योग्य है परन्तु वह न तो उसके लिये परमात्मा है और न परमात्मा से विशेष अथवा परमात्मा के समान ही । पति की आज्ञा के विरुद्ध भी परमात्मा की उपासना करना उसके लिये आवश्यक है । ब्रह्मसूत्र के अध्याय १ पाद दो, सूत्र १–८ (सर्वत्र प्रसिद्धयाधि-करण) में सिद्ध किया गया है कि सर्वत्र उपास्य परमात्मा ही है जीव,कहीं भी नहीं । अतः पति परमात्मा के रूप में उपास्य नहीं हो सकता । स्त्रियों और पुरुषों के लिये ईश्वर की उपासना दीक्षा, मन्त्र आदि समान रूपसे आवश्यक है—समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सहचित मेषाम् । समानं मन्त्रमभिमन्त्रयेवः, समानेन वोह-विषो जुहोमि । (ऋ० १०।१६१।३) । मनु जी ने लिखा है—"अहिंसा गुरु सेवा च निःश्रेयसकर पदम् ॥ (मनु २२।८३)

इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों के लिये भी यज्ञ, तप, दान आदि सभी वैदिक कर्म

विहित है। इस प्रकार वाल्मिकि रामायण में भगवान् राम शबरी से कहते हैं—

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः। कच्चिते नियतः कोपः आहारश्च तपोधने ।। कच्चिते नियमः प्राप्ताः कच्चिते मनसः सुखम्। कच्चिते गुरु शुश्रूषा सफला चारु भाषिणि ॥ ले०—वृजकिशोर सार्ही—श्री लक्ष्मणकिला श्री अयोध्या जी से प्रकाशित श्री अवध सन्देश पत्रिका का तेरहवें वर्ष सन् १९७० के श्री गुरु महिमा विशेषांङ्क के पृ० ११७ से १२३ तक सभारग्रहीत ॥

आजपति शब्द परही विचारकर लिया जाये। पति शब्दका मोटा अर्थहै कि पत्नी के लोक और परलोक की सम्यक प्रकार रक्षा करे। लोक की रक्षा तो अन्न, वस्त्र, आभूषणादि सुख सुविधायें प्रदान करने एवं अन्य पुरुषों से रक्षण मात्र से हो जाती है। परन्तु परलोक की रक्षा का पति के पास क्या साधन है। शरीरान्त होने के पश्चात् पति बेचारा स्वयं भी स्वकृत कर्माकर्म के अनुसार स्वर्ग या नरक चला जायेगा, तब वह अपनी पत्नीकी रक्षा कैसे करेगा। मानलें कि यदि पति धर्म परायण है, तब तो वह स्वर्ग जायेगा, वहाँ जाने पर पति परायणा पत्नी की रक्षा करेगा किन्तु पत्नी तो पति परायणा और पति दुराचारी, परदारारत, पाखण्डी, कपटी हिंसक, छली अन्यायी है, तो वह मरकर निश्चय ही नरक जायेगा। तब कहिये वह श्रीमान पति देवता अपनी पत्नी की रक्षा कैसे करेंगे। परलोक की रक्षा का एकमात्र साधन भगवान् श्री हरि का भजन ही है, सो बेचारी पत्नी कर ही नहीं सकती, क्यों कि हरि भजन पति को अच्छा नहीं लगता, यदि पति की बिना रुचि के पत्नी भजन पूजन करेगी, तो पतिदेव अप्रसन्न हो जायेंगे, पतिकी अप्रसन्नता से पत्नी नरक चली जायेगी। तब स्त्री के उद्धार का तीन दिन के पति बनने वालों के पास कुछ भी उपाय नहीं है। अब तो स्त्रियों के कल्याण का मार्ग सर्वथा बन्द हो गया। सामयिक प्रतिकूल परिस्थिति के कारण पतिव्रत समुचित रूप से पालन होना कठिन है। भगवान् का भजन करना पाप है, तब स्त्री का आत्मकल्याण पति कैसे कर सकते हैं। अर्थात् नहीं कर सकते हैं।

अब वास्तविक तथ्य पर आ जाइये। आज जो जीव, जिस स्त्री का पति है। इस जन्म के पूर्व नहीं था। और दूसरे जन्म में फिर यही पति होगा, यह भी अनिवार्य नहीं है। तब स्त्री पुरुष का पति पत्नी का सम्बन्ध पूर्वकृत कर्माधीन केवल इसी जन्म में इसी शरीर का है। भूत भविष्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। सोचिये कि पत्नी पति सेवा परायण है तो मरकर स्वर्ग जायेगी। और उसके पति यदि व्यभिचारी, भ्रष्टाचारी, हिंसक एवं पाप करते हैं, तब मरने पर नरक जायेंगे या नहीं।

अवश्य ही नरक जाना पड़ेगा अब विचार कीजिये कि वह दूसरे का पति कैसे हो सकता है। जो स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता: वह पत्नी की रक्षा कैसे करेगा। अस्तु नारी समाज के साथ यह भारी अन्याय है, कि वह भगवान् का भजन करके आत्म कल्याण करने में भी स्वतन्त्र नहीं रहे।

जैसे श्री सद्‌गुरु को भगवत् स्वरूप मानने की आज्ञा शास्त्र देता है, उसी प्रकार स्त्री को भी पति को भगवान् का रूप मानने का विधान है। किन्तु यह दोनों विधान इसी लिये हैं कि शिय गुरु को पत्नी पति को भगवत् स्वरूप मानकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक सेवा करके आज्ञा के अन्दर रहकर भगवत् कृपा का अनुभव करें। यदि जीवनभर सेवा करनेके बादभी शिष्य एवं पत्नी भगवत् कृपाका अनुभव न कर पायें। तो गुरु एवं पति से शिष्य और पत्नी को क्या लाभ हुआ है। यह तो सर्वथा त्रिकाल सत्य है ही, कि सभी जीवों के प्राप्य और भोक्ता एकमात्र परमात्मा ही हैं। किसी भी जीव का प्राप्य एवं भोक्ता कोई भी जीव नहीं है। और न कोई जीव किसी भी जीवका प्रापक या भोग्य ही है। तब सोचियेकि, स्त्री शरीर में जो आत्मा है, क्या वह पुरुष शरीर वाले आत्मा का भोग्य या प्रापक है। यदि नहीं है तब यह हठ क्यों कि स्त्री को पति की आज्ञा के बिना भगवान् के भजन का भी अधिकार नहीं है। यदि भजन करने का अधिकार है, तो फिर पति की परतन्त्रता क्यों। मनुस्मृति में यह तो प्रमाण है कि पत्नी पति की बिना आज्ञा व्रत, उपवास, तीर्थ, दान आदि न करे। केवल पति की सेवा करने से ही स्वर्ग को प्राप्त होती है। किन्तु यह प्रमाण तो नहीं है कि भगवान के भजन में भी पति की परतन्त्रा है। यह तो सर्वथा सत्य बात है कि यदि पति पूर्वजन्म का पापात्मा है, तो अपनी स्त्री को भजन करने की अनुमति कभी भी नहीं देगा, न स्वयं ही भजन करेगा। तब धर्म के ठेकेदार बनने वाले बुद्धिजीवी कहलाने वाले सज्जन बतावें कि उस स्त्री का कल्याण कैसे होगा। यदि कोई यह कहे कि पति सेवा से कल्याण हो जायेगा। ऐसा नहीं हो सकता, क्यों कि जिस पति की सेवा करने पर पत्नी को आत्म कल्याण की प्राप्ति बताई जाती है। वह पति देवता ही पापरत होने के कारण नीच योनियों में भटकते हुये नरक की शुभ यात्रा करते हैं तब उनकी सेवा करनेवाली स्त्री को मुक्ति मिल जाये, इतनी सस्ती मुक्ति नहीं है। मुक्ति की प्राप्ति तो एकमात्र भगवान् श्रीहरि की उपासना से ही होगी। जो पति को व्यर्थ लगती है। क्यों कि यदि पत्नी का मन भगवान् में लग जायेगा तो पति देवता के मनोरंजन में संकोच(कमी हो जायेगा। अस्तु ऐसाकौन बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो अपनीपत्नीके कल्याण की भावना करके भगवत् भजन में लगाकर अपने शारीरिक सुख स्वाद में बाधा डाले॥ ऐसे स्वार्थी पतियों की कृपा से स्त्रियों का आत्म कल्याण नहीं हो सकता है।